प्रोफ़ेसर प० मन्तेयफ़ेल

जीव-जगत की कहानियां

प्रगति प्रकाशन
मास्को

अनुवादक: नरेश वेदी
डिज़ाइनर: ग० निकोल्स्की

Профессор П. Мантейфель

РАССКАЗЫ НАТУРАЛИСТА

На языке хинди

अनुक्रम

भूमिका

प्रकृति से कितने ही तरीकों से प्यार किया जा सकता है।

उससे कोई इसलिए भी प्यार कर सकता है कि ऐसा न कर पाना और यह न कह उठना कि "उफ, कितना सुहावना है!" सामान्यतः असंभव है। ऐसा कहते हुए वह न वन और न पक्षियों के कलरव का ही अनुभव करता है।

दूसरी ओर प्रकृति से कलाकार की तरह, सच्चे ढंग से, उसके रहस्यों के भीतर प्रवेश करने को सदा प्रयत्नशील रहते हुए भी प्रेम किया जा सकता है।

फिर उससे स्वामी की तरह भी प्रेम किया जा सकता है, जो उसकी सुंदरता की ओर आकृष्ट होकर उसका पैनी निगाह से अध्ययन करता है और साथ ही उसे निर्देशित करने, सुधारने तथा उसकी निधि में वृद्धि करने की भी कोशिश करता है। इस पुस्तक के रचयिता प्रोफ़ेसर प्योत्र अलेक्साद्रोविच मंतेयफ़ेल (१८८३-१९६०) का प्रकृति से इसी भांति का प्रेम रहा है।

मुझे उनके साथ जंगल की सैर करने का तब सौभाग्य मिला, जब मैं एक छोटी लड़की ही थी। मुझे लगता था कि उनकी पांच ज्ञान मानवीय इंद्रियां से अधिक इंद्रियां है। बड़े कद और चौड़े कंधोंवाला यह आदमी जंगल में पग धरता हुआ चलता जाता था और वह सभी कुछ देखता जाता था, जो उनके शिक्षार्थियों की तेज आंखों से छिपा रहता था। उन्हें हर सुरसुर, हर सरसराहट सुनाई देती थी और प्रकृति गोया उनमें समा जाती थी।

वह पक्षियों को सीटी बजाते हुए आहटहीन चाल से आगे बढ़ते ही चले जाते थे, और वे इस सीटी का जवाब देते थे।

परंतु सबसे दिलचस्प बात कुछ बाद में शुरू हुई – उन्होंने हमें बारीक से बारीक चीजों, हर हरकत के बारे में बताया, निष्कर्ष निकाले और अंततः इस सबका सामान्यीकरण किया।

दृष्टिपात से अवलोकन और फिर प्रयोग – यही था इस वैज्ञानिक का नारा। प्रस्तुत पुस्तक की सभी कहानियों पर इस नियम की प्रत्यक्ष छाप है। ये महज किसी शिकारी

की नहीं, बल्कि एक बड़े वैज्ञानिक की कहानियां हैं, जो अपने को पशु-पक्षी की मनमोहक कहानियों के वर्णन तक ही सीमित न करके पाठक को कुछ निश्चित निष्कर्ष निकालने के लिए भी प्रेरित करती हैं। वेशक, इस पुस्तक में उनकी सब कहानियां सम्मिलित नहीं हैं। उनकी सूची बहुत लंबी है।

प्रो० मंतेयफ़ेल का सारा जीवन (सिवाय पहले विश्व युद्ध और १९२१-१९२२ में लाल फ़ौज में उनकी सेवा के वर्षों के) अपने प्रिय विज्ञान को ही समर्पित रहा। उन्होंने उत्तरी याकूतिया से दक्षिण उज्बेकिस्तान तक, साइबेरिया से कज़ाख़स्तान तक पूरे देश का भ्रमण किया था। जिन-जिन जगहों की उन्होंने यात्रा की, उनका उल्लेख करना कठिन है।

उनका वैज्ञानिक कार्य युवावस्था में आरंभ हुआ था। उनके शिक्षकों में विख्यात वैज्ञानिक विलियम्स तथा प्रसिद्ध रूसी पक्षिविद मेन्ज़बीर थे।

मंतेयफ़ेल के बहुत से कार्यों ने बड़ी ख्याति प्राप्त की। इनमें सेबल की कृत्रिम संतानोत्पत्ति, ख़रगोशों एवं चितरालों के झुंडों का अध्ययन और मूल्यवान समूरवाले जानवरों के जलवायु-अनुकूलन संबंधी कार्य प्रमुख हैं।

मास्को के चिड़ियाघर, जहां मंतेयफ़ेल ने चौदह साल वैज्ञानिक कार्य का संचालन किया था, वैज्ञानिक अभियानों और सोवियत देश के असंख्य पशु-संरक्षणालयों ने इस खोज-कार्य के आधार का काम किया था।

अपनी खोजों में प्रो० मंतेयफ़ेल सदैव पशु का अध्ययन उस वातावरण में करते थे, जिसमें वह रहता था, क्योंकि आसपास के वनस्पति तथा जीव-जगत और मिट्टी की विशेषता जानकर ही उस जानवर की सच्ची जानकारी हासिल की जा सकती है।

वैज्ञानिक होने के साथ-साथ वह श्रेष्ठ अध्यापक और युवा पीढ़ी के प्रतिभाशाली पथप्रदर्शक भी थे। उन्होंने कई शिक्षालयों में अध्यापन-कार्य किया और उनके कई शिष्यों ने, जो अब वैज्ञानिक हैं, विज्ञान के मार्ग पर अपने पहले क़दम तभी रखे, जब वे प्रो० मंतेयफ़ेल द्वारा संस्थापित बाल प्राणीविदों की मंडली के सदस्य बने थे।

मास्को खाल तथा समूर-संस्थान में अपने अध्यापन-कार्य के काल में उन्होंने एक हज़ार से अधिक आखेट एवं पशुविदों को तैयार किया था। उक्त संस्थान में वह वर्गीकरण एवं जीवप्रविधि जैसे नये और अत्यंत रोचक विभाग के प्रधान थे। उन्होंने युवाजन को न केवल जीवविज्ञान तथा अपनी अध्ययन-प्रणाली के प्रति, बल्कि मातृभूमि के प्रति प्रेम, धैर्य, अवलोकन-सटीकता, मैत्री तथा बंधुत्व की भावना, पौरुष्य तथा सहनशक्ति की भी शिक्षा दी।

ऐसे थे वह व्यक्ति, जिन्होंने इस पुस्तक की रचना की।

येलेना उस्पेन्स्काया,
लेखिका

दिलचस्पी से परिपूर्ण जीवन

एक बार की बात है, मास्को के चिड़ियाघर में काम करनेवाले तीन नौजवान जीवविज्ञानियों के साथ में साइबेरिया में घूम रहा था। हम शक्तिशाली येनिसेई नदी की सहायक कान नदी तक पहुंच गये।

हमने नाव में बैठकर नदी में यात्रा की, फिर असीम शारदीय चरागाहों को पैदल पार किया और आख़िर एक पर्वतश्रेणी की तलहटी में पहुंच गये। चौड़ी और शांत कान नदी यहां एक प्रचंड धारा का रूप लेकर एक तंग घाटी में से रास्ता बनाकर निकलती है। पहाड़ों पर हमारी दिलचस्पी अल्ताई रंगदुनी नामक कृन्तक में हुई। यह छोटा सा, चूहे जितना बड़ा ही जानवर है, यद्यपि खरगाश से इसका अधिक निकट संबंध है। ख़रगोश की ही तरह इसके भी बालदार पंजे और आगे की तरफ़ दोहरे ऊपरी कर्तक दंत होते हैं, मगर इसके कान छोटे होते हैं और दुम नहीं होती।

हम इन जानवरों की एक बस्ती के पास ही पहुंच गये

वे सरदियों के लिए चारा जमा करने में लगे हुए थे। वे घास या झाड़ियों की टहनियों को कुतर-कुतरकर पत्थरों में अपने भूमिगत घरों के पास सुखाने के लिए सावधानी से धूप में फैला रहे थे। फिर वे चारे को ले जाते थे और आगे निकली बड़ी-बड़ी चट्टानों के नीचे समेटकर रखते जाते थे।

हमने इन कृन्तकों द्वारा जमा किये जानेवाले चारे का अध्ययन किया और यह देखकर चकित हो गये कि वह कितना विविध और पौष्टिक है। चट्टानों के नीचे हमें इन परिश्रमी नन्हे-नन्हे प्राणियों के लिए विटामिनों, वसाओं, कार्बोहाइड्रेटों और औषधिक पदार्थों का प्रदाय सुनिश्चित करनेवाले एल्बुमेन-प्रचुर फलीदार तथा कई अन्य पौधे मिले।

यह देखना बड़ा दिलचस्प था कि आसमान में घटाओं के घिर आने और वर्षा शुरू हो जाने से ये प्राणी कितने व्याकुल हो जाते थे। इन चिंचियानेवाले जानवरों ने अधसूखी घास को जल्दी-जल्दी उठाया और उसे छिपाने के लिए लपकने लगे। लगता था, जैसे वे सचमुच सोचनेवाले जानवर हैं। लेकिन हम इस बात को भली भांति जानते थे कि यह बाह्य उद्दीपन के प्रति मात्र उनकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी।

वर्षा, जो उनके जीवन के हज़ारों वर्षों के संघर्ष में बार-बार उनके शीतकालीन भंडारों को नष्ट कर देती थी, उनके लिए एक निश्चित आपदा-संकेत बन गई है, इसलिए पहली बूंदों के गिरने के साथ वे चारे को छिपा देते हैं। उनके जो भाई-बंधु ऐसा नहीं कर पाते, वे सरदियों में भूखे रहते हैं और भूखों मर तक सकते हैं, जबकि परिश्रमी जीव ज़िंदा रहते हैं।

ताइगा में हमारी मात्वेई गोलोव्कोव से मुलाक़ात हुई, जो एक वढ़िया मछियारे, शिकारी और उत्साही प्रकृतिविद हैं। उन्होंने हमें वताया कि सरदियों के भारी हिमपातों के समय साइवेरियाई हंगल और पहाडी भेड़ें रंगदुनियों के निवासस्थानों के पास आकर उनके चारे के उन भंडारों को सफ़ाचट कर जाते हैं, जिन्हें वे हिमपात से वचाने के लिए चट्टानों के नीचे छिपाकर रखते हैं और इस तरह उन्हें भूखे मरने के लिए मजवूर कर देते हैं। सेवल और एर्मिन जैसे हिंस्र पशु मुक़ावलतन वहुत कम नुक़सान करते हैं। ये प्राणी सनातन शत्रु हैं। सेवलों के आखेट-स्थलों में एर्मिन या साइवेरियाई मार्जारिका नहीं मिल सकते, क्योंकि सेवल उन्हें खदेड देंगे। ख़ुद साइवेरियाई मार्जारिका एर्मिनों को नही रहने देंगे, जो इन कृन्तकों के सवसे ख़तरनाक दुश्मन हैं। तेज़ और फुर्तीले एर्मिन उनके खोदे हर छेद या विल में घुस सकते हैं।

मात्वेई प्रकृति के एक वहुत ही पैने प्रेक्षक थे। उन्होंने हमें वताया कि एक वार उन्होंने देखा कि एक भूरा उल्लू अपने रोयेंदार पंजों से हपुषा की टहनी से चिपका हुआ है। वूढ़े मात्वेई ने वड़ी सावधानी से झाड़ी का चक्कर लगाया। उल्लू ने उन पर से निमिष मात्र को भी आंखें नही हटाई – उसने अपने सिर को एक पूरे चक्कर मे, वल्कि उससे भी ज्यादा घुमा दिया। वूढ़े मात्वेई को हैरानी हुई, "क्या इसकी गरदन में कोई हड्डी नही है? उसने किस तरह विना किसी पेड़ से जा टकराये उड़कर वीच हवा में अपनी गरदन सीधी कर ली?"

मैंने बूढ़े मात्वेई को बताया कि पक्षियों और विशेषकर उल्लुओं की गरदनें बड़ी लोचदार होती हैं, उनके सिर उनकी गरदनों से आदमियों और दूसरे स्तनप्राणियों की तरह दो संधियों से नहीं, बल्कि एक ही संधि से जुड़े होते हैं। इसके अलावा, पक्षियों का हर ग्रैव कशेरुक काफ़ी विस्थापित हो सकता है।

बूढ़े मात्वेई ने हमें एक खड़ी चट्टान दिखाई, जिस पर दो विशालकाय भूरे भालुओं में भयंकर संग्राम हुआ था, जबकि वह मादा भालू, जिसके पीछे वे दोनों जान देने पर तुले हुए थे, पास ही बैठी हुई थी और उनकी तरफ़ ज़रा भी ध्यान नहीं दे रही थी। उसे जैसे न तो दोनों योद्धाओं की चिंघाड़ें सुनाई दे रही थीं और न एक-दूसरे पर पड़नेवाले उनके भारी-भारी प्रहार। आखिर एक करारे वार से दोनों में से कमज़ोर प्रतिस्पर्धी खड्ड में गिर गया। ख़ासी लंबी देर तक वह पत्थरों और चट्टानों की धसान के साथ-साथ खड़े ढाल पर लुढ़कता गया। आख़िर जब वह खड़ा हुआ, तो उसने ऊपर की तरफ़ एक उदासीभरी नज़र डाली। विजेता चट्टान के किनारे खड़ा उसकी हर हरकत को देख रहा था। कुछ समय के बाद पराजित भालू लंगड़ाता हुआ वहां से चला गया।

बूढ़े मात्वेई का तंबू कान के तट के पास ही था। उसके पास ही उनकी एक ऐसी मुठभेड़ हुई थी, जो, उनके कथनानुसार, वह कभी नहीं भूलेंगे। एक रात को वह तंबू के बाहर अलाव में लकड़ियां डालने के लिए आये। उनके पास लकड़ी क़रीब-क़रीब बिलकुल ख़त्म हो गई थी और इसलिए वह जंगल के छोर तक चले गये। उन्होंने गट्ठर भर सूखी झाड़ियां बटोरीं

श्रौर उठाकर अपने तंबू की तरफ़ चले ही थे कि छोटे-छोटे फ़र-वृक्षों के एक झुंड के पीछे उन्हें एक स्याह आकृति नजर आई। बूढ़े मछियारे ने सोचा, "सांभर होगा कोई, और क्या!" और हुश करके दुतकार दिया। अगले ही क्षण एक विशालकाय भालू ने उन्हें फ़ौलादी जकड़ में कस लिया। बूढ़े मात्वेई और उन पर हमला करनेवाले के बीच यदि झाड़ियों का गट्ठर न होता, तो यह आलिंगन उनकी जान लेकर ही छूटता।

झपट्टा मारने के साथ भालू के पैर जमीन से उठ गये। दोनों ही गिर गये और किनारे के खड़े ढाल पर लुढ़कते हुए नदी में जा पड़े। पानी के नीचे भालू ने बूढ़े मात्वेई को अपनी पकड़ से छोड़ दिया। पानी का ज़ोर भालू को कुछ मीटर आगे बहा ले गया, फिर उसने पानी से निकली एक चट्टान को जकड़ लिया। बूढे मात्वेई पानी में डूबे एक ठूंठ से चिपट गये, बस उनकी नाक ही पानी के ऊपर दिखाई देती थी। गरदन तक पानी में खड़ा भालू तेजी के साथ सभी तरफ़ नजर डालता आदमी के दिखाई देने के इंतजार में था। फिर वह धीरे-धीरे किनारे की तरफ़ चल दिया। किसी तरह हाथ-पैरों के बल वह नदी से निकल आया। उसके बाल भरे चमड़े से पानी की धारें चू रही थीं। वह अपने पिछले पंजों पर खड़ा हो गया और ज़ोर-जोर से सूं-सूं करता अपने नथुने को इधर-उधर घुमाने लगा। मगर बूढ़े की गंध को वह नहीं पकड़ पाया। फिर वह भदमदाता हुआ किनारे पर चढ गया, मछियारे के पुराने पदचिह्नों को पा लिया और उनके साथ-साथ तेज़ी से जंगल में चला गया।

एक-दो मिनट वाद, जव भालू जंगल में ग़ायव हो गया, तो बूढ़े मात्वेई सावधानी के साथ अपने तंबू में गये और अपनी वंदूक उठा ली। अलाव की रोशनी में वढ़िया-से-वढ़िया जगह लेकर उन्होंने भालू को चुन-चुनकर गालियां देकर चुनौती देना शुरू किया।

"मगर वह वड़ा चालाक जानवर था," बूढ़े मात्वेई ने कहा। "मेरी चुनौती उसने मंजूर की ही नहीं। वह जानता था कि यह झाड़ी के पीछे से अचानक हमले जैसा निरापद काम नहीं है।"

इस कहानी ने मेरे नौजवान साथियों की कल्पना को झंझोड़ दिया। मैंने उन्हें बताया कि वहुत कम भालू ही नर-हत्यारे होते हैं। आम तौर पर ये जानवर वहुत ही सतर्क होते हैं और अगर वे आदमी के सामने पड़ जायें, तो उसकी निगाह से निकलने की कोशिश करते हैं।

ऊपर की तरफ़ जाते समय हमें किनारों पर अकसर स्टग्लेट मछलियों के सिर पड़े मिलते थे–ऊदविलावों की दावतों के अवशेप। सोवियत संघ के कई भागों में यह जानवर दुष्प्राप्य हो गया है, शिकारियों ने इसका लगभग पूरी तरह से सफ़ाया कर दिया है।

मछियारा ऊदविलाव को अपना विश्वसनीय मित्र मानता है। कारण यह है कि सरदियों में स्टरलेट नदी के तल में गहरे गढ़ों में छिप जाती हैं, जहां वे बड़ी संख्या में एकत्र हो जाती हैं। ऊदबिलाव उनके शीतकालीन ठिकानों का आसानी से पता चला लेता है और उनके सामने के तट पर अपना

अस्थायी बिल खोद लेता है। इन निशानों की बदौलत बूढ़े मात्वेई को पता चल जाता है कि मछलियां कहां हैं। मछियारा और ऊदबिलाव दोनों जब मछलियों के अड्डे का सफ़ाया कर देते, तो ऊदबिलाव नये ठिकाने पर चला जाता और मछियारा भी उसके पीछे-पीछे वहीं पहुंच जाता।

बूढ़े मात्वेई ने कहा, "सरदियों में ऊदबिलाव के साथ कहीं ज्यादा मजा आता है। आपको लगता है कि आप ताइगा मे नदी के किनारे अकेले नहीं हैं, बल्कि पास ही एक और मछियारा भी है।"

अभी वह यह कह ही रहे थे कि विलो की एक टहनी पर नीले-हरे रंग की एक चिड़िया नजर आई।

"अहा, यह है मेरी मनपसंद चिड़िया!" बूढ़े मात्वेई ने नन्ही कौड़िल्ली को स्नेहपूर्ण आंखों से देखते हुए कहा। "हम इन्हें नीली गौरैया कहते हैं। ये वसंत में यहां आती है, अपनी चोंचों से खड़े नदी-तट में छेद बना लेती है और उनमें अपने बच्चों को पालती-पोसती हैं। अपने बच्चों को ये छोटी मछलियां खिलाती हैं। हम असल में एक ही डाल के आम हैं— दोनों ईमानदार मछियारे हैं।"

कौड़िल्ली तिरछी नजर से नदी की तरफ देखती रही और अपनी गर्दन को ऐंठती रही, जैसे लंबे कलफ़दार कालर के कारण असुविधा का अनुभव कर रही हो। मिनट भर बाद ही हलकी सी छपछपाहट हुई—कौड़िल्ली ने गोता मार दिया था। नदी की सतह पर बने चक्कर जब फैलकर ख़त्म हो गये, तो हमने देखा कि कौड़िल्ली अपने हरे पंखों के सहारे बड़ी कुशलता

के साथ तैर रही है। तीन सेकंड बाद वह एक नन्ही मछली को चोंच में दबाये पंख फड़फड़ाती ऊपर उड़ गई। पेड़ की एक टहनी पर बैठकर उसने मछली को उस पर पटककर सुन्न कर दिया। फिर मछली को चोंच में मज़बूती से पकड़कर कौड़िल्ली टेढ़ी-मेढ़ी नदी के ऊपर से तेज़ी से गुज़रती किनारे में बने अपने घोंसले में जा पहुंची।

कुछ ही देर बाद वह उसी डाल पर अपने अनुकूल स्थान पर आ बैठी।

बूढ़े मात्वेई ने कहा, "जब कभी बहुत अकेलापन महसूस होता है, तो मैं पास ही किनारे में इसके बैठने के लिए एक टहनी गाड़ देता हूं। लेकिन इसके लिए यह जानना ज़रूरी है कि किस तरह की टहनी लगाई जाये। नहीं तो चाहे आप मछली पकड़ने की अच्छी-से-अच्छी जगह भी टहनी गाड़ दें, फिर भी हो सकता है कि आपकी यह नीले परोंवाली दोस्त भूखी ही रह जाये। अगर आपकी टहनी ज़्यादा पतली हुई, तो ऐसा ही होगा। बात यह है कि पतली टहनी में लचक ज़्यादा होती है, जिसकी वजह से कौड़िल्ली अपने लक्ष्य पर से आगे निकल जाती है। और ज़्यादा मोटी टहनी भी ठीक नहीं रहती, क्योंकि उसमें लचक बिलकुल नहीं होती। इन नीले परिंदों के लिए बिलकुल सही मात्रा में लचक होनी चाहिए, और लचक ठीक न हो, तो मछली इनके पल्ले नहीं पड़ती। हर चीज़ बिलकुल सही मिक़दार में होनी चाहिए। और मैं चूरा डाल-डालकर इनके लिए छोटी मछलियों को आकृष्ट करता हूं।"

इससे यह बात मेरी समझ में आ गई कि मछली की घात में कौड़िल्ली हमेशा एक ही टहनी पर क्यों बैठती हैं।

"जी हां, मुझे तो ये नीले परिंदे ही पसंद हैं," बूढ़े ने फिर कहा। "ये ईमानदार जानवर हैं, न कि इन धारियोंवाली गिलहरियों की तरह चोर। ये गिलहरियां भी हमेशा खाने लायक किसी-न-किसी चीज़ को चुराने और उसे ज़मीन में अपने बिलों में छुपाने की घात में ही रहती हैं। सुनिये, किस तरह ये 'त्रुम-त्रुम' कर रही हैं। जानते हैं, ये क्यों इस तरह शोर कर रही हैं? सूखी रोटी के इस थैले को देखिये ज़रा, जिसे मैंने उस टहनी पर लटका रखा है। एक-दो दिन पहले की बात है, मैंने थैले को तंबू में ही रहने दिया। गिलहरियों ने उसे ढूंढ लिया और अपने दांतों से उसमें छेद कर दिया। उन्होंने पंजों से अपने मुंहों में रोटी का चूरा ठूंस लिया और गाल फुलाये लगीं अपने बिलों की तरफ़ दौड़ने। अरे, साहब, थैला ऊपर तक भरा हुआ था और जब मैं लौटकर आया, तो वह इतना ख़ाली हो चुका था कि हिलने से रोटी की खड़खड़ाहट सुनी जा सकती थी। इन धारियोंवाली उचक्कियों ने लूट लिया था मुझे! अभी भी मेरे थैले के नीचे कम-से-कम तीस गिलहरियां होंगी। वे उस तक पहुंच नहीं सकती, मगर उनके मुंहों में लार ज़रूर आ रही होगी।"

बूढ़े मात्वेई मिनट-दो-मिनट ख़ामोश बैठे गिलहरियों के "त्रुम-त्रुम" शोर को सुनते रहे और फिर बोले, "उनमें से कई गिलहरियां पहले काफ़ी देर थैले के नीचे ही उछलती रहीं और फिर यह कहिये कि ख़ाली मुंह ही भाग गईं और इसीलिए

उन्होंने इस शोर से आसमान को सर पर उठा रखा है। उनको पसंद न आनेवाली कोई भी बात हो जाये, तो वे यही करती हैं। चाहे बिजली तडके, गोली चले – उनको अच्छी न लगनेवाली कोई भी बात हो जाये, तो वे इसी तरह रिरियाना शुरू कर देती हैं – उनके बाल उलझे होते हैं, वे पेड़ों के ठूंठों पर सिरों को पंजों में पकड़कर बैठ जाती हैं और दुखभरी आवाज़ में चिल्लाने लगती हैं 'त्रुम-त्रुम'! आज वे इसलिए रो रही हैं कि उन्हें आसानी से और खाना नहीं मिल रहा है। अब उन्हें उसकी तलाश में ताइगा जाना होगा।"

क्षण भर चुप रहने के बाद उन्होंने मेरे साथियों से पूछा, "ख़ैर, आप लोग तो वैज्ञानिक हैं, मगर क्या आप मेरे इस सवाल का जवाब दे सकते हैं – ८० किलो भारी एक पत्थर को कैसे खींचकर नाव में डालें कि जिससे नाव पानी में ऐन वहां रह सके, जहां स्टरलेटों के झुंड हैं?"

नौजवानों के जवाब सुनकर वह हंस पड़े और बोले, "अगर आपने ऐसा किया, तो आप सीधे पेंदे में जा बैठेंगे।"

फिर वह मुझसे बोले, "क्या आप यह कर सकते हैं? आप तो हर बात जानते हैं।"

"मेरे ख़याल से मैं कर सकता हूं," मैंने जवाब दिया। "वैसे मैंने पहले कभी यह किया नहीं है। पानी में पत्थर बहुत भारी नहीं होता। ज़ोर से खींचने से पत्थर उछल पड़ेगा और सीधे पानी के बाहर निकल आयेगा। आपको सिर्फ़ यही करना होगा कि उसे जल्दी से नाव में खींच लें और फिर नाव को प्रवाह में सीधा करने के लिए चप्पुओं को संभाल लें।"

बूढ़े मात्वेई ने हैरानी से मेरी तरफ़ देखा और फिर व्यग्रतापूर्वक पूछा, "किसने आपको यह बताया?"

"आर्कीमिदीज़ ने," मैंने जवाब दिया।

"वह कहां रहता है?"

"वह मर चुका है।"

"उसने यह बात आप ही को बताई या हर किसी को बता दी है? मेरे घर में तो यह राज़ मेरे परदादा के ज़माने से चला आ रहा है। मेरे गांव मे मेरे अलावा और कोई आदमी कान नदी में से स्टरलेट नही पकड़ सकता।"

मैंने उनसे कहा कि आर्कीमिदीज ने यह बात (विशिष्ट भार का अध्याय) अपनी भौतिकी की पाठ्यपुस्तक मे लिखी थी और मेरे ख़याल से यह किताब उनके गांव मे नही पंहुची।

"जब आप कान नदी से येनिसेई नदी में पहुंचे, तो मेहरबानी करके वहां के लोगों को आर्कीमिदीज के बारे मे मत बताइयेगा, नही तो थोड़े ही दिनों मे नदी में स्टरलेट नही बच रहेंगे। उसे किसने यह बात सिखाई?"

"उसने ख़ुद ही जान ली," मैंने जवाब दिया।

बुढ़ऊ काफ़ी देर अलाव के आगे बैठे हैरानी के साथ यही कहते रहे, "वाह, कैसा तेज़ दिमाग़ था! भला, उसका नाम क्या था? फिर बताइये!"

"आर्कीमिदीज," नौजवानों ने उन्हें याद दिलाया।

जब हम लोग उनसे विदा लेने लगे, तो बूढ़े मात्वेई उदास हो गये।

"यह पहला मौक़ा है कि मैंने शहरी लोगों को अपनी इच्छा से ताइगा आते देखा है। अब आपके बिना मैं अकेलापन महसूस करूंगा। जंगल में मैंने पहले कभी अकेलापन महसूस नहीं किया था।"

जी हां, और अगले ही दिन वह हमसे मिलने के लिए आये।

क्या जानवरों के दिमाग़ होते हैं?

भूरे भेड़िये, चालाक लोमड़ी और झबरे भालू के क़िस्से भला कौन नही जानता! बचपन में सुनी इन कहानियों का असर इतना ज्यादा होता है कि कई लोग यही समझते रहते हैं कि जानवरों के भी लगभग मनुष्यों जैसे ही दिमाग़ होते हैं। हमसे कभी-कभी पूछा जाता है, "क्या जानवरों के दिमाग होते हैं?" इस सवाल का सही जवाब क्या है? निस्सदेह, जानवरो के दिमाग मनुष्य के दिमाग से कही घटिया होते हैं। वे सोचते नही, उनकी सारी प्रतिक्रियाए प्राकृतिक वातावरण मे उस जीवन की सभी जटिलताओं द्वारा पूर्वानुकूलित होती है, जिसके लिए जानवरों ने युगो लबी अवधि मे अपने-आपको अनुकूलित किया है।
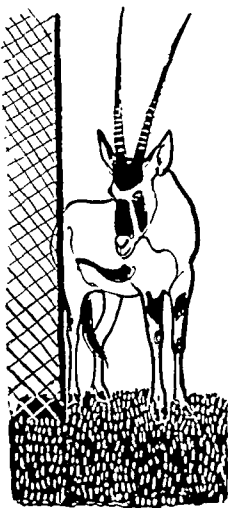
एक बार यह देखने के लिए कि हमारे जानवर कितने बुद्धिमान हैं, हमने मास्को के चिड़ियाघर मे निम्नलिखित प्रयोग किया। अफ़्रीका से हाल ही मे आये कई बेइसा मृगों को एक

वड़े वाड़े में रख दिया गया, जिसके चारों तरफ़ लोहे की रेलिंग लगी हुई थी। वाड़े के वीच में भी आरपार ऐसी ही रेलिंग लगी हुई थी और हमारे वंदी उसके एक हिस्से में रहा करते थे। शुरू-शुरू में उन्होंने रेलिंग में से ज़वरदस्ती निकलने की नाकाम कोशिशें कीं। फिर, धीरे-धीरे यह वात उनकी समझ में वैठ गई कि रेलिंग के आगे जाना असंभव है। हमने इस विचार को उनके दिमाग़ों में भली भांति वैठ जाने दिया और फिर भीतरी रेलिंग को हटा दिया। हम में से कुछ लोगों को यक़ीन था कि अब मृग सारे बाड़े में फैल जायेंगे। मगर ऐसी कोई वात नहीं हुई—किसी भी मृग ने उस रेखा को पार करने की कोशिश नहीं की, जहां से रेलिंग अलग कर दी गई थी—वे इतने वुद्धिमान थे ही नहीं। वे इस रेखा तक भागते आते और उसके पहले ही ठहर जाते। पिछले हफ़्तों में जो सौपाधिक या अनुकूलित प्रतिवर्त उन पर हावी हो गया था, वह किसी भी तरह के जंगले से ज़्यादा मज़वूत था। उन्हें याद था कि कितनी भी कोशिश करके भी वे रेलिंग से नहीं गुज़र पाये थे।

उक्रइना के अस्कानिया-नोवा पशु-संरक्षणालय में भी भूरे चिकारों, शुतुरमुर्ग़ों और लामाओं के साथ इसी तरह के प्रयोग किये गये थे। वहां भी किसी भी जानवर ने रेखा को पार करने का साहस नहीं किया।

जानवरों की "मानसिक शक्ति" को हमारे पशुपालन फ़ार्मों तक में अकसर वास्तविकता से अधिक कूता जाता है। उदाहरण के लिए, सेवलों और चितरालों के लिए कटघरे वनाते

समय फ़र्श को अकसर तार की जाली से ढंक दिया जाता है, ताकि ये जानवर ज़मीदोज़ रास्ता खोदकर निकल न भागें। यह सावधानी अनावश्यक है। मास्को के चिड़ियाघर में सेवल और चितराले मिट्टी के फ़र्शवाले कटघरों में ही रहते थे और उनमें से किसीने भी कभी भी रास्ता खोदने की कोशिश नही की। मगर वे इतने बुद्धिमान थे भी नही कि यह काम कर पाते। वे कटघरे के तार की जाली के साथ टकराते थे और फिर उसी के पास खोदने की कोशिश करते थे। मगर इसकी पूर्वापेक्षा करके हमने तार की जाली के पेंदे के साथ-साथ एक पतली सी पटरी लगा दी थी और उसे मिट्टी की हलकी परत से ढंक दिया था। सेवल और चितराले इस पटरी को बस खुरचते ही थे। अगर उनमें कुछ सेंटीमीटर दूर खोदने की बुद्धि होती, तो वे आसानी से रास्ता खोदकर आज़ादी पा सकते थे।

शेर और बाघ भी कोई ज्यादा "बुद्धिमान" नही होते। हमारे चिड़ियाघरों मे उन्हे अकसर प्लाईवुड की बनी इतनी पतली दीवारों से अलग रखा जाता है कि वे उनके शक्तिशाली पंजों की मामूली-सी चोट से भी टूट सकती है। मगर साधारणत: इन विशाल पशुओं को ऐसी पतली बाड़े तोड़ डालने का ख़याल आता तक नही, क्योंकि वे मज़बूत दीवारोंवाले मकानों या कटघरों में ही बड़े हुए थे। जब हम किसी जानवर को कटघरे में रखे जाने का अभ्यस्त बना देते है, तो यह उसकी आदत में शामिल हो जाता है और यह उसके अपने उस घर से, जिसका वह आदी हो चुका है, निकल भागने के प्रयास को

रोकता है। यह प्रतिवर्त इतना शक्तिशाली हो जाता है कि कभी-कभी जानवर को उसके कटघरे के खुले दरवाज़े से – अगर वह उससे पहले कभी नहीं निकला है, तो – बाहर निकालना भी असंभव हो जाता है।

हर कोई जानता है कि चीतल बहुत अच्छी तरह कूद सकता है, मगर हमारे चिड़ियाघर के चीतलों ने अपने बाड़े की नीची बाड़ को भी कभी फांदने की कोशिश नहीं की। कोपेतदाग़ी भेड़ा भी बिलकुल यही करता था। कई साल तक वह अपने बाड़े में शांतिपूर्वक रहता रहा, मगर एक दिन एक कुत्ता अचानक उसके बाड़े में आ घुसा और इससे वह इतना डर गया कि अपने बाड़े को शेष पार्क से अलग करनेवाली बाड़ को फलांग गया। इस मामले में अंतर्जात प्रतिवर्त अर्जित प्रतिवर्त पर हावी हो गया था।

भूरे भालू वानर के सिवा बाक़ी सभी जानवरों से ज़्यादा उपक्रमी होते हैं। किसी सिंह, बाघ या तेंदुए ने अपने कटघरों के फिसलनेवाले दरवाज़ों को उठाकर भागने की कभी कोशिश नहीं की, यद्यपि यह काम काफ़ी सरल है। मगर भालू जैसे ही रखवाले को इस तरह के दरवाज़े को उठाते देखता है, वह उसकी नक़ल करता है। फिर भी, भालू इतने होशियार नहीं होते

कि एक-दूसरे की कमर पर खड़े होकर अपने कटघरे से निकल जायें, जो इतनी आसान बात है कि तीन साल के बच्चे के भी दिमाग़ में आ जायेगी।

शुरू वसंत के एक दिन की बात है। बरफ़ पिघलने लगी, तो हमारा एक भालू – भारी भरकम पहलवान – अचानक अपने शक्तिशाली पंजों से बर्फ़ के गोले बनाने लगा। इन भौंडे गोलों का उसने खाई में ढेर लगा दिया और उन पर खड़े होकर अपने अगले पंजे दीवार के ऊपर तक फैला दिये। लगता था कि वह भागने पर तुला हुआ है। मामला इतना संगीन लगने लगा कि कोई चिल्ला पड़ा, "बम फेंको उस पर!"

रखवाले लपककर पासवाले गोदाम में गये और कुछ ही मिनटों में बम ले आये। ये बम ख़ास तरह के पटाखे होते हैं, जो फटते तो बड़े जोर की आवाज के साथ हैं, पर लोगों या जानवरों को कोई नुक़सान नहीं पहुंचाते।

बम पहलवान के बनाये बरफ़ के पहाड़ पर जाकर फटे और उन्होंने उसे डरा दिया। उसके बाद बहुत समय तक पहलवान ने उस भयानक जगह के पास तक जाने की हिम्मत नहीं की और भागने की कोई और कोशिश नहीं की। लेकिन थोड़े ही दिन बाद पहलवान ने एक बार फिर चिड़ियाघर के कर्मचारियों को अचंभे में डाल दिया। एक हरी टहनी उसके मन को भा गई, जिसकी पत्तियां हवा में फरफराया करती थीं। पहलवान ने जमीन पर खड़े-खड़े उस तक पहुचने की नाकाम कोशिशें कीं। फिर वह एक बडे पत्थर को धकेलकर पेड़ के नीचे ले आया, उस पर खड़ा हुआ और उस मोटी डाल को उसने बड़ी

आसानी से उखाड़ लिया, जिस पर उसकी मनपसंद टहनी लगी हुई थी। यह एक ऐसी बात थी, जो और कोई भालू नहीं कर सकता था।

त्बिलीसी के चिड़ियाघर में एक अजीब वाक़िआ हुआ। पालतू भालुओं के एक दल का रखवाला एक दिन बाड़े के दरवाज़े की चाबी भूल आया। उसे लाने के लिए दफ़्तर वापस जाने के बजाय वह बाड़े की पत्थर की दीवार पर चढ़कर भीतर उतर आया। यह कोई मुश्किल काम नहीं था, क्योंकि दीवार में कई बड़ी-बड़ी दरारें थीं।

भालुओं ने उसकी दी रोटी खा ली और उसे बाड़े की सफ़ाई करते देखते रहे। सफ़ाई ख़त्म करने के बाद जब रखवाला उसी रास्ते से चढ़कर बाहर चला, तो भालू भी उसीके पीछे-पीछे चल दिये। चारों भालुओं को पकड़ना और उन्हें बाड़े में वापस रखना काफ़ी मुश्किल साबित हुआ। दीवार की दरारों को सीमेंट से भरना पड़ा।

इन सब बातों से यही साबित होता है कि भालुओं की अनुकरण-क्षमता ख़ासी होती है।

हवाई जोंकों से अद्‌भुत लड़ाई

जून की एक शाम की बात है। दिन भर ख़ूब गरमी पड़ी थी और अब गांव का रेवड़ वापस आ रहा था। गायें अपने सिर इधर-उधर चलाकर और दुमे फटकारकर उन मच्छरों और घुड़मक्खियों को भगाने की कोशिश कर रही थी, जो जंगल से उनका पीछा कर रही थी। चरवाहा अपने जानवरों को आगे रखने के अलावा और कुछ नही कर सकता था – वे दर्द और गुस्से के मारे पागल हो रहे थे। इन संत्रस्त प्राणियों को देख मुझे जंगली जानवरो से अपनी भेंटो की याद आ गई। ऐसा लगेगा कि ख़ून चूसनेवाले परजीवियो के कारण, जो केवल तेज दर्द ही नही देते है, बल्कि संक्रामक रोगों के वाहक भी होते हैं, उनका जीवन असह्य हो जाता होगा। मगर बात ऐसी नही है।

मुझे याद है कि आमू दरिया के मुहाने मे अपनी यात्राओं के समय एक बार मैंने एक विशालकाय जगली सूअर देखा
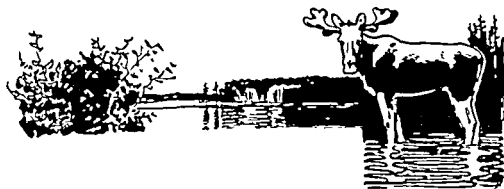
था। मैं घने सरकंडों से होकर आगे जा रहा था और साफ़ ज़मीन के एक ख़ासे बड़े टुकड़े के छोर पर पहुंच गया था और वहीं, मुझसे थोड़ी ही दूरी पर एक सूअर एकदम निश्चल खड़ा हुआ दिखाई दिया। मैंने अपना शक्तिशाली दूरबीन अपनी आंखों से लगाया और देखा कि वह आंखें मूंदे ऊंघ रहा है, जबकि कस्तूरा आदि कुछ जलकुक्कुट तथा कीड़े-मकोड़ों पर गुज़र करनेवाले अन्य पक्षी उसकी कमर पर उछल-कूद और फड़फड़ा रहे थे।

वे घुड़मक्खियों और बड़े-बड़े मच्छरों को सूअर की खाल के मर्म-स्थलों पर बैठने का मौक़ा दिये बिना बड़ी सफ़ाई के साथ चट कर रहे थे। अपनी चोंचों को कीड़ों से भर-भरकर पक्षी तेज़ी के साथ अपने पेटू बच्चों के पास उड़ जाते और फिर तुरंत लौट आते थे। अपने कष्टदाताओं से इस तरह अपने पंखदार मित्रों से संरक्षित सूअर ढलते सूरज की गरम किरणों का मज़ा ले रहा था। इस मामले में पारस्परिक लाभ प्रत्यक्ष है।

लोसीनोओस्त्रोव्स्काया में मास्को खाल तथा समूर संस्थान के वन-शिविर में भी मैंने एक ऐसा ही दृश्य देखा था, जहां तृतीय वर्ष के छात्र व्यावहारिक प्रशिक्षण पा रहे थे। बतख़ों के चूज़ों के दो झुंड वहां दोपहर के खाने के समय छात्रों के खुले भोजनालय के सामने सदा जमे रहते थे। गरमी ज़्यादा होती, तो शिविर की दसों भेड़ें, जो पास ही जंगल में चरा करती थीं, मक्खियों, डांसों और मच्छरों से बचने के लिए लपकती हुई वहां आ जाती थीं। वहां आकर वे ज़मीन पर गिर जातीं और निश्चल पड़ी रहतीं। उनको देखते ही बतख़ों के बच्चे अपने

नन्हे-नन्हे पंख फैलाते और उनकी तरफ़ लपक पड़ते। वे भेड़ों के सिरों और उनके सांस के साथ उठते-गिरते धड़ों पर उछलकर चढ जाते और जंगल से अपने शिकारो के पीछे भिनभिनाती आती मक्खियो को पकडना शुरू कर देते। अपनी लंबी-लंबी गरदनो को इधर-उधर मोडते हुए बच्चे अपने शिकारों पर मंडराती बडी-बडी मक्खियो और मच्छरो को बड़ी सफाई के साथ पकडते जाते। जरा ही देर मे उनकी चौड़ी चोंचे जंगल की तरफ से होनेवाले हमले का ख़ात्मा कर देती और उसके बाद बच्चे फिर भोजनालय मे दिलचस्पी लेने लगते।

इसमे सबसे अचरज की बात यह थी कि भेडो और बतखों के बच्चों मे यह नया प्रतिवर्त कितनी तेजी के साथ अवस्थापित हो जाता था। लगता था, जैसे उन्होने दोनों पक्षों के पारस्परिक लाभ का शब्दहीन समझौता संपन्न कर लिया हो। आम तौर पर बत्तखे खुरदार जानवरो की कमर पर नही चढती, जैसा कि मैना और कौए करते है।

युग-युग के दौरान एल्कों ने रक्त पिपासु कीटों के विरुद्ध एक अद्भुत रक्षा साधन विकसित कर लिया है। सरदियों मे उनकी स्वेद-ग्रंथिया, जो पसीना पैदा करती है, काम करना बंद कर देती है। सूखी खाल शरीर की गरमी को बचाये रखने में सहायता देती है। उत्तरी बारहसिगों या रेनडियरो को न सरदियो मे पसीना आता है, न गरमियो मे। ये दोनों ही जानवर ज्यादा न गरमा जाने के लिए भागते-भागते अपने मुह खोल देते है और जीभों को लटकाकर बर्फ को चाटते जाते है और जल्दी-जल्दी सांस लेने लगते है। गरमियो मे रेनडियर खुले पठारों पर चरते

हैं, जहां हवा रक्तपिपासु मक्खियों को उड़ा ले जाती है। एल्क, जो जंगलों में ही रहते हैं, इन परजीवियों से अपनी स्वेद-ग्रंथियों की सहायता से छुटकारा पाते हैं, जो वासंतिक निर्मोचन ऋतु में काम करना शुरू कर देती हैं। गरमियों भर एल्कों के बाल कत्थई रंग के तेलिया पसीने से तर होते रहते हैं, जो मामूली भुनगों तो क्या, मच्छरों तथा घुड़मक्खियों तक को भगा देता है। ये ख़ूनचूस कीड़े इस पसीने के कारण दम घुटने से मर जाते हैं, जो उनके सांस लेने के छिद्रों को बंद कर देता है। मगर कुछ अरक्षित बालहीन स्थल बच रहते हैं— अगली टांगों के टखने, पिछली टांगों के घुटने और कान। ये जगहें परजीवियों के कारण अकसर ख़ून बहते घावों में बदल जाती हैं। अपने को बचाने के लिए ये जानवर घंटों घुटने तक पानी में खड़े रहते हैं और बीच-बीच में अपने सिरों को उसमें डुबाते और कानों को फड़फड़ाते रहते हैं।

परजीवी मुसीबत पैदा कर देते हैं। एक बार किसी अज्ञात स्थान से आनेवाला बवंडर अपने साथ अस्कानिया-नोवा

पशु-संरक्षणालय में छोटे-छोटे मच्छरों के समूह को ले ग्राया, जिनके काटने से जलन होती है ग्रौर घाव हो जाते हैं। दो-तीन दिन तक लोगों को ग्रपनी खिड़कियां बंद करके घरों के भीतर बैठे रहना पड़ा। कई नन्हे लकलक इन ख़तरनाक मच्छरों द्वारा, जो हर कहीं घुस जाते थे, ग्रपने घोंसलों मे ही मारे गये। बढ़िया-से-बढिया मच्छरदानियां भी उनके ग्रागे बेकार थीं। इन मच्छरों के ग्राख़िरकार वहां से ग़ायब होने तक कई जानवरों ग्रौर वयस्क पक्षियों तक को भयानक तक़लीफ़ झेलनी पड़ी।

मध्य एशिया में भुनगे विशेषकर तक़लीफ़देह हुग्रा करते थे, जहां उनके दंश से खाल पर ख़तरनाक घाव हो जाया करते थे। परजीवीविज्ञान संस्थान ने, जिसके प्रधान ग्रकादमीशियन ये० न० पाव्लोव्स्की थे, निश्चित किया कि ये भुनगे सरदियां सैंडवर्ट तथा चूहे जैसे ग्रन्य कृन्तकों के बिलों में गुजारते हैं। काफ़ी प्रयोगों के बाद संस्थान ने पता चलाया कि वसंत में ये मच्छर ग्रपने शीतकालीन ग्रावासों से बहुत दूर-दूर उड़कर चले जाते हैं ग्रौर शहरों तक मे जा बसते हैं। इसके फलस्वरूप एक व्यापक ग्रभियान शुरू किया गया, जिसके दौरान सभी सैंडवर्ट ख़त्म कर दिये गये ग्रौर उनके बिलों को नष्ट कर दिया गया। इस तरह मनुष्य के युगों पुराने शत्रुग्रों पर विजय प्राप्त की गई।

भालुओं का परिवार

नर भालू अपने नवजात बच्चों को फूटी आंख भी नहीं देख सकते। वसंत में मादा भालू को जंगल में किसी ऐसी जगह जाकर छिपना पड़ता है, जहां परिवार के प्रमुख से उसकी मुलाक़ात न हो, और पतझड़ में वह अपने बच्चों के साथ सरदियां काटने के लिए कोई अलग ठिकाना ढूंढ लेती है। हां, बता दें, भालू हर दो साल में एक बार जोड़ा बनाते और बच्चे देते हैं।

कुछ वर्ष हुए, हमने एक भालू पिता को अपने बच्चों का आदी बनाने की कोशिश की थी। मास्को के चिड़ियाघर के भारी-भरकम भालू पहलवान और मादा भालू रोनी को एक ही बाड़े में रख दिया गया। सरदियों में रोनी ने तीन बच्चों को जन्म दिया। पहलवान उनकी तरफ़ तिरछी नज़र से देखता और

अकसर उन्हें अपने भारी पंजे के नीचे लाने की कोशिश करता। मगर सतर्क मां उसे पास न फटकने देती। जव कभी भी पिता पास आता, रोनी उसके और अंधे वच्चों के वीच आ जाती। पहलवान डील-डौल मे रोनी से दो गुना था और उससे कही अधिक ताक़तवर था। मगर चेत जाने पर रोनी साक्षात चंडी ही वन जाती थी। वह ऐसे जमकर मुक़ावला करती, ऐसे ज़वरदस्त घूंसे वरसाती कि पहलवान हार जाता। अपनी घरवाली के मुक्कों से वचता वेचारा पहलवान अपने अगले पंजों से अपने सिर को छिपाता पिछले पैरों के वल पीछे हट जाता। एक वार तो वह खाई में ही गिर पड़ा।

ये पारिवारिक झगड़े तव तक चलते रहे कि पहलवान ने हार न मान ली। वह रोनी से इस क़दर आतंकित था कि अगर कभी वच्चे अपनी मांद के वाहर निकल आते और अपने वाप की तरफ़ आने लगते, तो वह डर के मारे उनसे दूर भागता और सिर को पंजों से ढंके डरता-डरता पीछे रोनी की तरफ़ देखता जाता।

हमने समझा कि पहलवान ने परिवार मे अपनी इस नई स्थिति को मंजूर कर लिया है, मगर हम गलती पर थे।

जिस वाड़े में पांच भालुओं का यह परिवार रहता था,. उसके बीच मे पेड़ का एक वड़ा, ऊचा ठूठ था। एक वार हुआ यह कि एक वच्चा उस ठूंठ पर चढ गया और वैठकर धूप खाने लगा। इधर पहलवान ने देखा कि रोनी झपकी ले रही है। वस, वह चुपके से ठूठ के पास गया और उस पर ऐसा ज़ोर का हाथ मारा कि चीखता हुआ वच्चा हवा में उछल

गया। उसकी चीख़ सुन कर रोनी तुरंत जाग गई और उसने पहलवान की कसकर मरम्मत की। पहलवान बेचारा एक कोने में जा दुबका और अपमान का असर ख़त्म करने के लिए आंख मूंदकर सो गया।

परिवार में कुछ दिन शांति बनी रही। रोनी पहले की तरह चौकस नहीं थी। एक सुहावनी सुबह उसकी आंख लग गई। पहलवान ने देखा कि एक बच्चे ने खाई के किनारे जा-कर अपने अगले पंजे पानी में डुबा दिये हैं। पहलवान खाई में उतरा और चुपके से पानी को छपछपाते बच्चे के पास जा पहुंचा। फिर बाप ने अचानक बच्चे की गरदन को अपने दांतों में दबाया और उसे पानी में झोंक दिया। बच्चे ने चिल्लाने के लिए अपना मुंह खोला, पर चिल्ला न सका—पानी उसका दम घोंट रहा था। पहलवान भी पानी में अब और ज़्यादा न रह सकता था। उसने सांस लेने को अपना सिर उठाया और उसी क्षण उसके शिकार ने, जो अभी भी उसके दांतों में लटका हुआ था, ऐसी मर्मभेदी चीख़ मारी कि वह हमारे चिड़ियाघर के "पशु द्वीप" के कोने-कोने में गूंज गई। मां उछली और सीधे अपने हिंसालु घरवाले पर झपटी।

देखने की चीज़ थी वह! चंडीरूपा मादा पहलवान पर जा टूटी और उसकी वह गत बनाई कि बेचारा अपने सिर को छिपाये पीछे हटता-हटता खाई के आख़िरी सिरे पर पहुंच गया। आख़िर जब रोनी ने उसे बख़्शा, तो पहलवान घंटे भर से ज़्यादा पानी में ही रहा। अपनी घरवाली के डर के मारे, जो गुस्से में भरी खाई के किनारे ही इधर-उधर घूम

रही थी, उसकी किनारे पर चढ़ने की हिम्मत नहीं हो रही थी।

उस दिन के बाद परिवार में क़ानून और व्यवस्था की अच्छी तरह से स्थापना हो गई। रोनी अपने बच्चों के पालन-पोषण में रम गई और उनके बाप की तरफ़ उसने जरा भी ध्यान देना बंद कर दिया।

पहलवान के नये बाल निकल आये और उसके बाद अपने बच्चों में उसकी दिलचस्पी पूरी तरह से ख़त्म हो गई। ज्यादातर वह अपने पंजे फैलाये पीठ के बल शांति से सोता ही रहता।

सरदियां आ गई। भालुओं ने अपने लिए जमीन में गहरे गड्ढे खोद लिये और ज्यादातर समय वे वहीं ऊंघते रहते। रोनी अपने बच्चों के साथ ही सोती थी – पहलवान की मांद बाड़े के दूसरे कोने में थी। मौसम में कुछ गरमी होती, तो बच्चे मांद से बाहर बर्फ़ पर खेलने के लिए निकल आते। कभी-कभी वे साहसपूर्वक अपने बाप के पास तक चले जाते और तब पहलवान उनका अपनी मां की मांद को लौटने का रास्ता काटने की कोशिश करता। सरदियों में रोनी की मातृवृत्ति इतनी तेज नहीं रही थी और वह अपने बच्चों की रक्षा के लिए तभी आती थी कि जब सभी उसकी मांद में ही होते थे। मगर बच्चे भी अब

इतने बड़े हो चुके थे कि अपनी परवाह आप कर सकते थे। वे अपना पीछा करनेवाले की पकड़ से आसानी से निकल जाते थे। सिर्फ़ एक ही बार पहलवान उनमें से एक को पकड़ पाया। पहलवान ने उसे, जो अब ३० किलो से ज़्यादा का हो चुका था, ऐसी धौल जमाई कि उसके पैर ज़मीन से उखड़ गये और वह कुछ मीटर हवा में उड़कर फिर ज़मीन पर जा गिरा।

वसंत में परिवार में कोई गंभीर विवाद नहीं हुआ। बच्चे ज़्यादा हिम्मतवर बन गये थे और अपनी बख़ूबी हिफ़ाज़त कर लेते थे।

एक बार चिड़ियाघर के पार्क में होकर जाते समय मुझे भालुओं के बाड़े के पास खड़ी भीड़ का बड़ा आनंद भरा शोर सुनाई दिया। पता लगा कि भालुओं ने अच्छा ख़ासा तमाशा दिखा दिया था। पहलवान खाई में था और उसका एक बच्चा—वही, जिसे कुछ पहले उसने ऐसी धौल जमायी थी कि वह दूर जा गिरा था—ऊपर चौकस खड़ा उसे देख रहा था। पहलवान ने खाई से निकलकर ऊपर आने की कोशिश में पत्थर की दीवार की एक दरार में अपने पंजे टिकाये। उसी क्षण वह बच्चा लपककर उसके पास आया, उसे चट-चट-चट तीन करारे तमाचे रसीद किये और अपनी मां के पास भाग गया।

मास्को चिड़ियाघर के कुछ निवासियों—काले तीतरों, नन्हे खरगोशों और गानेवाले पक्षियों—ने अपना बचपन पिंजरों में बैठे बैठे ही बिताया। उनके विकास के दौरान हमने उन्हें सतत देखभाल में रखा और चिंता की हमें कोई बात नजर नहीं आई। वे बिलकुल सामान्य प्राणी लगते थे, उन्हें बढ़िया-से-बढ़िया खुराक मिलती थी—बस एक ही बात ऐसी थी, जिसमें उनकी जिंदगी अपने वनवासी भाई-बहनों से भिन्न थी और यह बात थी व्यायाम का अभाव, क्योंकि उनके पिंजरे बहुत छोटे थे।

धीरे-धीरे ये पक्षी और पशु बड़े हो गये और हमारे लिए अपना प्रयोग पूरा करना संभव हो गया। हम यह जानना चाहते थे कि तंग जगह बाल पशु के विकास पर क्या प्रभाव डालती है। हमने शुरूआत एक खरगोश से की और जिस छोटे-से पिंजरे

में वह बड़ा हुआ था, उससे निकालकर उसे एक बड़े मैदान में छोड़ दिया। नन्हा-सा ख़रगोश अपनी पिछली टांगों और कूल्हे के बल बैठा कभी इधर देखता था, तो कभी उधर। सूरज चमक रहा था। मैदान में घास और रंगीन फूलों का क़ालीन बिछा हुआ था। इतनी लंबी-चौड़ी खुली जगह को देखकर खरहा चकित हो गया। फिर वह ऊपर उछला। एक बार फिर उसने ऊपर छलांग लगाई। लगता था, जैसे हर मिनट के साथ वह ताक़त और फुर्ती इकट्ठी कर रहा है। एक बार फिर उसने एक लंबी छलांग के लिए अपनी पिछली टांगों को तनाया, उछला ... और ढेर-सा होकर गिर पड़ा। हम लपककर उसके पास गये, मगर वह मर चुका था। शव परीक्षा से पता चला कि उसकी मृत्यु आकस्मिक हृद-पक्षाघात से हुई थी।

एक और छोटे-से पिंजरे में एक काला तीतर बड़ा हुआ था। अपने जीवन में वह कभी नहीं उड़ा था, क्योंकि उसका पिंजरा बहुत छोटा था। जब वह ६१ दिन का हुआ, तो उसकी दुम के पंखों में काले पंख नज़र आने लगे। वह एक ख़ूबसूरत काला पक्षी बन गया, जो अन्य वयस्क काले तीतरों से किसी भी तरह भिन्न नहीं था। वसंत आया, तो उसे मादा काले तीतरों के साथ एक बड़े बाड़े में छोड़ दिया गया। बड़े पिंजरे में यही उसका पहला और आख़िरी दिन था। कल के क़ैदी ने अपनी दुम फैलाई, एक किलकारी लगाई और अपना प्रणय-गीत "गुनगुनाने" लगा। अन्य नर काले तीतरों की तरह वह भी अपनी मिलन-स्थली में नाचने लगा कि तभी अचानक वह अपनी पीठ के बल गिर पड़ा और ऐंठने और तड़पने लगा।

जरा ही देर में उसकी जान जाती रही। शव परीक्षा से पता चला कि उसकी महाधमनी फट गई थी।

छोटे-से पिंजरे में ही अपना बचपन बितानेवाले एक नर बुलबुल की भी इसी तरह मौत हो गई। वह अपने गीत की पहली ऊंची कूक से मारा गया था, जिसके कारण उसे सांघातिक रक्तस्राव हो गया था।

इन प्रयोगों से क्या साबित होता है?

यह कि उड़ने, कूदने या अपने प्राकृतिक वातावरण में पशु-पक्षियों के लिए सामान्य अन्य व्यायामों के बिना उनके आंतरिक अंगों का अपर्याप्त विकास होता है। हृदय की और धमनियों की दीवारें पर्याप्त मजबूत नहीं होतीं; वे अत्यधिक दुर्बल होती हैं और रक्तचाप में आकस्मिक वृद्धि को नहीं झेल पातीं। प्राकृतिक परिस्थितियों में भी जो बाल-पक्षी अपने घोंसलों को छोड़कर जाते हैं, वे अकसर आघात से मर जाते हैं। आम तौर पर ऐसा तभी होता है, जब पक्षियों को बाजों या दूसरे दुश्मनों से जान बचाकर भागना होता है। एक बार मुझे बताया गया था कि एक बाज एक खेत पर मैनाओं के झुंड के पीछे लपका, तो कई छोटे पक्षी मरकर नीचे गिर गये। अकसर ऐसा होता है कि अचानक शिकारी की छोड़ी गोली की आवाज से आतंकित होकर हंसों के बच्चे जल्दी से जल्दी जान बचाकर भागने के लिए जोरों से पंख फड़फड़ाते हैं, तो वे बेचारे भी मरकर गिर पड़ते हैं।

निश्चल जीवन का ख़रगोशों पर खासकर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। उनकी पिछली टांगों की पेशियां तो शक्तिशाली होतीं
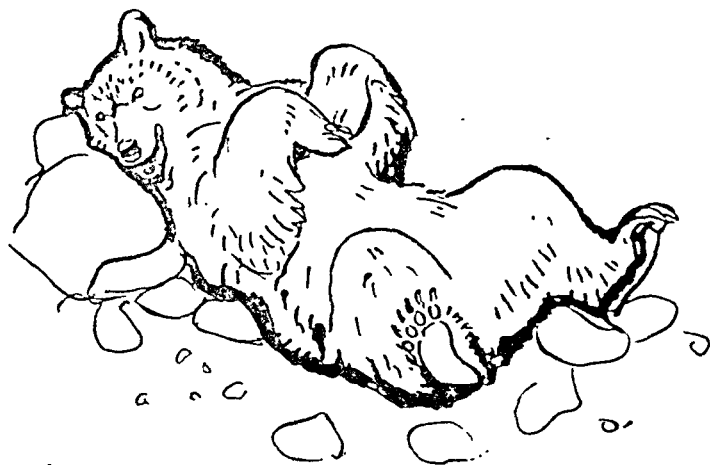
हैं, पर उनके हृदय कमज़ोर होते हैं। नन्हे ख़रगोश को पिंजरे से निकलने और वाहर उछलने-कूदने दिया जाये, तो उसकी अल्पविकसित हड्डियां टूट तक सकती हैं। बड़े ख़रगोश को भी अगर लगभग २५ दिन के लिए पिंजरे में बंद कर दिया जाये, तो उसकी पिछली टांगों की हड्डियां आसानी से टूट सकती हैं, जैसा कि ख़रगोशों को साइबेरिया में छोड़े जाने के समय देखा गया था।

जंगली मुर्ग़े, बुलबुल और ख़रगोश के बाद दो भूरे भालुओं-के साथ प्रयोग किया गया। जिन पिंजरों में उन्होंने अब तक अपनी ज़िंदगी गुज़ारी थी, उनसे बड़े नये पिंजरों में लाने के लिए उन्हें ज़बरदस्ती खींचना पड़ा था। गतिविधि की इस अपरिचित स्वतंत्रता के कारण उनका रक्तचाप वढ़ गया और वे आंतरिक रक्तस्राव के कारण मर गये।

एक दफ़ा एक शिकारी द्वारा चिड़ियाघर में लाया गया एक सफ़ेद ख़रगोश अपने पिंजरे से भाग निकला और उसने अपने

आपको हमारे दोस्त, भालू पहलवान के बाड़े में पाया। वह उसके पीछे लपका, मगर तेज खरगोश ने पहलवान की सारी कोशिशों को बेकाम बना दिया। पीछा करनेवाले को पीछे छोड़ खरहे ने दो मीटर ऊंची छलांग लगाई और दीवार के एक बाहर निकले पत्थर पर जा पहुंचा, जहां वह दबककर बैठ गया। भालू उसे नही देख सका। उसने कोने-कोने को जाकर देखा, अपनी पिछली टांगों पर खड़ा हो गया और हवा को सुसकारने लगा। उसने अपनी नाक से सारी दीवार की छानबीन की और आखिर खरगोश की गंध को पकड़ लिया। पहलवान अपने पंजों को फेंकता उस जगह के पास आया। खरगोश ने अचानक छलाग लगाई और सीधे भालू के सिर पर जा पहुंचा। उसे दबोचने की अंधाधुंध कोशिश मे पहलवान फिसल गया और धड़ाम से जमीन पर जा गिरा और उसका सिर फटाक से दीवार से जा टकराया। दो घंटे तक वह इसी तरह पीछा करता रहा और यह एकदम मौके की ही बात थी कि इस पीछे का अंत भालू द्वारा कोने मे एक घूसे की चोट से इस चपल कूदने-वाले के मारे जाने के साथ हुआ।

भारी-भरकम पहलवान के लिए यह पीछा वैसे भी स्मरणीय था। इस अस्वाभाविक व्यायाम से वह इस कदर थक गया था कि दो दिन तक उसने कुछ भी नही खाया, पीठ के बल ज़मीन पर पड़ा रहा और हर हरकत पर कराहता रहा। उसकी पेशियों मे सचमुच बहुत दर्द हुआ होगा, क्योंकि चिड़ियाघर में निवास के इतने वर्षो में उसने एक ही दिन में कभी इतना व्यायाम नही किया था।

साहसी और कायर

कहावतों, परियों की कहानियों और किस्सों से हमें विश्वास है कि शेर और बाघ बहुत बहादुर, गधे मूर्ख, सूअर गंदे और ख़रगोश डरपोक होते हैं। मगर इनमें से कई बातें ग़लत हैं।

एक बार एक मेमना उस्सूरी बाघों के बाड़े में जा घुसा। इन बाघों ने बकरी पहले कभी नहीं देखी थी। यह देखकर कि मेमना उनकी तरफ़ निर्भीकतापूर्वक बढ़ता चला आ रहा है, डर के मारे ये जानवर गुर्राते हुए और अपने दांत दिखाते हुए पीछे दीवार की तरफ़ खिसकने लगे। मेमना अपनी मां की तलाश में आगे बढ़ता ही चला गया। बिलकुल विवश होकर बाघों ने अपनी आंखें भींच लीं और वहीं उछल-उछलकर हवा

में पंजे चलाने लगे। उनके एक आकस्मिक प्रहार से मेमना मर गया, मगर बाघ फिर भी डरते-डरते ही उसके नन्हे-से निष्प्राण शरीर के आसपास घूमते रहे।

तो बाघ के विश्वविदित साहस के बारे में इतना ही कहना काफ़ी है। वे हत्यारे बेशक होते हैं। हर सुबह, जब गाड़ियों में लादकर जानवरों का खाना उनके पिंजरों को पहुंचाया जाता है और घोड़े पर बाघों की निगाह पड़ती है, तो वे दबककर बैठ जाते हैं और उस पर उछलने के लिए तैयार हो जाते हैं। पर घोड़े की ख़ुशक़िस्मती से वे बाड़े की मोटी खाई के पार छलांग नहीं लगा सकते।

चिड़ियाघर आनेवाले लोग जलजीवशाला में नन्हे-से स्वर्णमत्स्य को विकराल पाइक मछली के जबड़ों के पास से बेफ़िक्री के साथ गुजरते देख हैरत में आ जाते हैं। क्या इसका कारण यह है कि यह छोटा स्वर्णमत्स्य असाधारण रूप से साहसी है? जी नहीं, इसका कारण यह है कि पाइक स्वर्णमत्स्य की तरफ़ ध्यान देती ही नहीं, क्योंकि अपने प्राकृतिक पर्यावरण में वह रुपहली शल्की मछलियों का शिकार किया करती थी। पाइक रूशियन मछली को भी नहीं छेड़ती, क्योंकि पोखरों-तालाबों के इन प्राणियों से वह अपरिचित है।

मास्को चिड़ियाघर के विशाल आठ मीटर लंबे जालीदार अजगर को आम तौर पर सफ़ेद दुधमुंहे सूअर खिलाये जाते हैं और वह उनका रंग देखने का आदी हो गया था। जैसे ही वह

किसी सफ़ेद सूअर के बच्चे को देखता है, वह उसे अपने शक्तिशाली शरीर की लपेट में ले लेता है, उसका दम घोंट देता है और उसकी थूथनी की तरफ़ से शुरू करके उसे निगल जाता है। मगर अगर कहीं उसके पिंजरे में सूअर का चित्तीदार बच्चा रख दिया जाये, तो यह विशाल अजगर बस कुंडली लगाकर बैठ जाता है और बचाव की स्थिति अपना लेता है।

मेरे एक परिचित शिकारी, ग० ग० शूबिन को लापलैंड के पशु-संरक्षणालय में अनजाने में एक भूरे भालू ने आ दबोचा। भालू अपने सबसे ताज़ा शिकार – झाड़ियों में अपने मारे एक एल्क – की हिफ़ाज़त कर रहा था। वह इन झाड़ियों में से शिकारी पर झपटा, उन्हें नीचे गिरा दिया और उनके एक पैर को अपने दांतों में दबोच लिया। बरफ़ पर पड़े-पड़े ही उन्होंने किसी तरह अपनी दुनाली बन्दूक का घोड़ा चढ़ाया और भालू की तरफ़ निशाना लगाते हुए गोली दाग़ दी, मगर बंदूक चली ही नहीं। लेकिन फिर भी इस अजीब आवाज़ – धातु की खटखट – से भालू घबरा गया और उछलकर दूर जा खड़ा हुआ। दूसरी नली से छूटी गोली ने भालू को ज़ख़्मी कर दिया और वह झाड़ियों में भाग गया।

अफ़्रीका में फ़िल्म की शूटिंग के लिए जानेवाली एक टोली के सदस्यों ने मुझे शेरों के साथ अपनी मुलाक़ातों के बारे में कई बातें बताई। अगर हवा का रुख़ टोली की कार की तरफ़ होता, तो खुली जगह में बिखरे शेरों का झुंड उसे अपने काफ़ी पास तक आ जाने देता था। लेकिन अगर हवा का रुख़ उलटा होता, तो उन्हें आदमियों की मौजूदगी की गंध मिल

जाती थीं और वे भाग जाते थे। इसका यही मतलब है कि कई दूसरे जानवरों की तरह शेर भी नजर पर इतना निर्भर नहीं करते, जितना गंध पर।

गधे की मूर्खता तो कहावत जैसी ही बन गई है, मगर गधा क्या सचमुच बेवक़ूफ़ होता है? जो घटना मैं सुनाने जा रहा हूं, वह तो यही साबित करती है कि वह मूर्ख नहीं होता।

कई अन्य घरेलू जानवरों की तरह गधे भी मच्छरों, घुड़मक्खियों तथा अन्य परजीवियों को अपनी दुमों से या सीधे अपने को जोरों से कंपकंपाकर भगाते हैं। मध्य एशिया में मैंने एक बार देखा कि एक शरारती लड़के ने एक कुत्ते की खाल से एक डांस पकड़ा और उसे एक गधे पर छोड़ दिया। अड़ियल कीड़े को अपनी खाल पर महसूस कर गधा डांस की सख्त, सली देह को कुचलने की कोशिश में जमीन पर लोटने लगा। मगर लड़का शरारत से बाज नहीं आया – उसने वैसा ही एक डांस और ढूंढ निकाला और उसे गधे पर छोड़ने के लिए चुपके से उसकी तरफ़ बढ़ने लगा। गधे ने उसके हाथ में डांस को देख लिया और उछलकर छोकरे को ऐसी दुलत्ती जमाई कि वह पास एक खाई में जा गिरा। कहने की जरूरत नहीं, कोई बेवकूफ जानवर इतनी होशियारी नहीं दिखा सकता था।

एक रूसी कहावत है – "खरगोश की तरह डरपोक।" खरगोश डरपोक या कायर नहीं होते। कई लोग इस बात को नहीं समझ पाते कि खरगोश के जीवन-संघर्ष में उसके मजबूत पैर ही उसकी सबसे बड़ी संपत्ति हैं। अगर खरगोश इतने द्रुतगामी न हुए होते, तो उनके शत्रुओं ने कभी का उनका सफाया

कर दिया होता। पीछा करनेवाले से आगे निकल जाने की उसकी क्षमता ही आत्मरक्षा का उसका मुख्य हथियार है। लेकिन वह अपने दुश्मन के सामने से आंख मींचकर नहीं भागता, बल्कि आकस्मिकता आ पड़ने पर अत्यधिक तेज़ गति की एक दौड़ ही लगाता है— आम तौर पर वह इस बात का ध्यान रखता है कि अपने को थकने न दे। धीरे भागनेवाला शिकारी कुत्ता पीछा कर रहा हो, तो वह उससे महज़ ज़रा आगे ही रहता है और बीच-बीच में सिर घुमाकर उसे देख लेता है, मगर अगर पीछा करनेवाला बोर्ज़ाया कुत्ता है, जो अगर उससे तेज़ नहीं, तो उसके बराबर ज़रूर भाग सकता है, तो वह अपनी तीव्रतम रफ़्तार से दौड़ लगाता है और फिर पीछा करनेवाले से आगे निकलने के बाद दो-तीन किलोमीटर और भागता रहता है। मगर यह कायरता नहीं है – ख़रगोश के पास भागने के अलावा अपनी जान बचाने का और कोई साधन नहीं है।

अस्कानिया-नोवा पशु-संरक्षणालय में मैंने यह नज़ारा देखा। स्तेपी में घोड़े का बच्चा चर रहा था कि तभी अचानक एक ख़रगोश आया और अपनी पिछली टांगों पर खड़े होकर उसने अपने अगले पंजों से घोड़े को खरोंच दिया। घोड़ा एकदम उछलकर अलग हो गया और ख़रगोश मज़े में उसी जगह पर जम गया, जहां घोड़ा चर रहा था। एक और दिन मैंने देखा कि तीन ख़रगोश कुत्तों के झुंड से बचने के लिए भेड़ों के रेवड़ में निडरतापूर्वक जा घुसे।

ख़रगोश कुत्ते को देखकर सदा ही नहीं भाग खड़े होते। सरदियों की किसी रात में आप उसे कुत्ताघर में बंधे उसी कुत्ते

के, जिसने दिन में जंगल भर उसका पीछा किया था, भौंकने की जरा भी परवाह किये बिना सब्जियों के बाग़ में जड़ कुतरते हुए देख सकते हैं।

कई शिकारी ख़रगोश के मजबूत पंजों से गंभीर रूप से घायल हो चुके हैं। घायल ख़रगोश को आप अगर असावधानी से उसके कान पकड़कर उठायें, तब भी वह अपने पिछले पैरों से आपको बुरी तरह खरोंचें मार सकता है।

कई शिकारी पक्षी अपनी जान के लिए लड़ते ख़रगोश द्वारा ही मारे जाते हैं। कुछ शिकारियों ने ख़रगोश को अपनी पीठ पर उलटकर और अपने पिछले पैरों को मार-मारकर उकाब से अपनी रक्षा करते देखा है। कभी-कभी तो ख़रगोश उसकी आंतें तक निकाल देता है।

ख़ुद आपने भी कभी किसी कुत्ते को बहुत सावधानी के साथ किसी मुर्ग़ी के आसपास घूमते देखा होगा। इसका यही मतलब है कि किसी समय इस कुत्ते को अपने बच्चों की रक्षा करती मुर्ग़ी ने बुरी तरह चोंचें मारी होंगी। यह बात चाहे अजीब लगती हो, मगर चूजा भी सतानेवाले जानवर को डरा सकता है।

हमारे दक्षिणी स्तेपियों में रहनेवाला कामेंका नाम का छोटा-सा पक्षी तो और भी ज्यादा दिलचस्प मिसाल पेश करता है। यह पक्षी गोफ़रों द्वारा ख़ाली किये पुराने बिलों में रहता है। जब गोफ़रों के बच्चे अपने मां-बाप का घर छोड़ते हैं, तो वे अकसर अपने पैतृक निवासों पर फिर कब्जा करने की कोशिश करते हैं। यहीं ख़ूनी लड़ाइयां होती हैं। यह नन्हा-सा पक्षी अपने

अधिक्षेत्र पर हमला करनेवाले दुश्मन का बहादुरी के साथ मुक़ाबला करता है, उसके कान खींचता है और उस पर चढ़कर स्तेपी में दौड़ लगाता है। इस तरह की कुछ मुठभेड़ों के बाद बेचारा गृहहीन गोफ़र उन बिलों के पास जाने से बचता है, जिनमें वह उन्हीं पक्षियों को देखता है।

न हमें शुतुरमुर्ग़ को ही भूल जाना चाहिए, जिसके बारे में समझा जाता है कि वह डर के मारे अपना सिर रेत में गाड़ देता है। शुतुरमुर्ग़ ख़ासा विकट शत्रु है – उसके पैरों की ठोकरें घोड़े की लात की चोटों से भी ज़्यादा सख़्त होती हैं। लेकिन अगर आप अपने टोप को छड़ी में रखकर उठा दें, तो शुतुरमुर्ग़ फ़ौरन भाग जायेगा – शुतुरमुर्ग़ केवल उन्हीं प्राणियों पर हमला करता है, जो क़द में उससे छोटे होते हैं।

अगर हमने सूअर को उसका वांछित स्थान न दिया और उसके कलंक को दूर न किया, तो इतनी बड़ी-बड़ी झूठी ख्यातियों की पोल खोलनेवाला यह अध्याय अधूरा ही रह जायेगा। हमें कहना होगा कि सूअर सबसे साफ़-सुथरे जानवरों में से एक है। जिन फ़ार्मों में उनकी अच्छी तरह देखभाल की जाती है, वहां सूअर अपने बाड़े को साफ़ रखते हैं और दिशा फ़राग़त के लिए सबसे दूर के कोने को ही चुनते हैं। गरमी ज़्यादा हो, तो सूअर का मन पानी में डुबकी मारने को करता है, और इसमें भला बेचारे सूअर का क्या क़सूर है कि रास्ते में उसे तैरने के तालाब नहीं, नालियां ही मिलती हैं!

मिलाजुला परिवार

मास्को के चिड़ियाघर में सब तरफ़ से बंद एक लंबे-चौड़े मैदान में कई अलग-अलग जानवर एक साथ रहते थे। इनमें एक भूरा भालू, दो भेड़िये, तीन बिज्जू, छः उस्सूरी रैकून और छ लोमड़ियां थी।

उन्हें शैशव से ही साथ-साथ पाला गया था।

"आप यह कर क्या रहे हैं?" कई दर्शक हमसे कहा करते थे। "जैसे ही ये जानवर बड़े हुए, शक्तिशाली जानवर कमज़ोरों का सफ़ाया कर देंगे। प्रकृति अपना असर दिखाकर रहेगी।"

दो साल बीत गये। जानवर बड़े-बड़े हो गये, मगर कुदरत ने
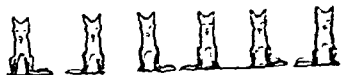
अभी भी अपना असर नहीं दिखाया था। और इस कुनबे में कोई भी किसी से डरता नहीं था – बस, फ़रग़ाना स्तेपी के लाल बालोंवाले भेड़िये के सिवा, जो हर किसी की "चाटुकारी" किया करता था। अपनी लंबी, हट्टी-कट्टी काठी के बावजूद वह हमेशा निरीह और बेचैन ही लगता था और छोटी से छोटी लोमड़ी के आगे भी नहीं अड़ता था। अन्य युवा पशु उसे अच्छी नज़रों से नहीं देखते थे।

लगता था कि जैसे किसी अनकहे समझौते से सारा ही परिवार सख़्त "अनुशासक," मादा भेड़िये दीक्ता की आज्ञा मानता था। ठीक है कि उसे शांति क़ायम रखने के लिए ज़्यादा कुछ करना नहीं पड़ता था, क्योंकि शांति भंग शायद ही कभी होती थी। खाने की नांद पर दीक्ता को कभी-कभी अपने बड़े-बड़े सफ़ेद दांत दिखाने पड़ जाते थे और भालू – किनके – की अक़ल ठिकाने करने के लिए यह काफ़ी रहता था। लालची लोमड़ियां अगर अपने हिस्से से ज़्यादा खाना ले लेतीं, तो भेड़िये अपनी थूथनियां मार-मारकर उसे उनके जबड़ों से गिरा देते थे।

बिज्जू सभी के मित्र थे। वे तो भालुओं तक की ज़्यादा परवाह नहीं करते थे।

कभी-कभी झगड़े हो भी जाते थे, मगर दीक्ता उन्हें

जल्दी ही मुलझा देती थी, जो घटनास्थल पर लपककर पहुंच जाती थी और झगड़ा करनेवालों को अलग कर देती थी।

जो दर्शक इस आशा में बाड़े के पास देर-देर तक खड़े रहते थे कि जानवरों में झगड़ा अब छिड़ा, अब छिड़ा, उन्हें निराश होना पड़ता था – वहां मार्शल ला लागू करने की नौबत आई ही नहीं। इस कुनबे मे व्याप्त व्यवस्था का कारण यही था कि ये जानवर छुटपन मे एक-दूसरे के आदी हो गये थे। उनमे कई अनुकूलित प्रतिवर्त समान थे, जो उन्होंने उस समय से विकसित किये थे, जब उनका काटना ख़तरनाक नहीं था। उन्होंने अपने पारस्परिक संबधो मे एक ऐसे सलीके का इस्तेमाल करना सीख लिया था, जिससे गभीर झगडे पैदा हो ही नही पाते थे। मिसाल के लिए, एक लोमड़ी, जो बच्चे भेड़ियों के साथ-साथ बडी हुई है, उस गोश्त की तरफ दूसरी बार आंख उठाकर भी नहीं देखेगी, जो किसी भेडिये को खाने के लिए दिया गया है। मगर वही लोमडी बर्फ पर सोते भेड़िये के ऊपर उछलकर चढ जायेगी और इस तरह मजे में सोने लगेगी, मानो गरम सोफे पर सो रही है।

जानवरों को एक साथ पालने का यह प्रयोग वह तरीका दिखाता है, जिससे मनुष्य उनके स्वाभाविक पारस्परिक संबधों में जबरदस्त परिवर्तन ला सकता है।

जानवर अपने मौसम नहीं भूलते

मौसम ख़ूबसूरत था। न बारिश थी, न बादल। धूप निकली हुई थी—हरियाली भरी गलियों में भी ख़ासी गरमी थी। मगर मास्को के चिड़ियाघर में भारत से लाया गया अजगर सभी कुछ ऐसे ही कर रहा था, मानो सरदी आ गई है। वह सुस्त और उनींदा हो रहा था—उसके खाने के लिए पास जो दुधमुंहा सूअर रखा गया था, उसकी तरफ़ वह ध्यान भी नहीं दे रहा था। अजगर एक बाहर निकली चट्टान के नीचे निश्चल पड़ा था, मानो अपनी जन्मभूमि, भारत में, शुरू हो जानेवाली शीतकालीन वर्षा से बच रहा हो।

सरदियों में, जब भूरे-भूरे बादल नीचे ही तैरते होते हैं और फोहे जैसे हिमकण लगातार गिरते जाते हैं, चिड़ियाघर के आस्ट्रेलियाई शुतुरमुर्ग़ अपने अंडे सेना शुरू करते हैं। इससे उन्हें क्या कि चिड़ियाघर का सारा ही पार्क बर्फ़ से सफ़ेद हो रहा है! इन शुतुरमुर्ग़ों की जन्मभूमि, आस्ट्रेलिया में तो यह वसंत का मौसम है।

अक्तूबर और नवंबर में आस्ट्रेलिया के ही रहनेवाले काले हंसों ने अंडे सेना शुरू किया। दर्शक श्वेत हिमकणों से मंडित

इन सुदर पक्षियों को उनके नरकट से इतनी सावधानीपूर्वक बुने घोंसलों पर बैठे देख सकते थे। हर घोंसले में पांच अंडे थे। नर और मादा बारी-बारी से उन पर बैठा करते थे।

सरदियों में प्रजनन जैसी इस विचित्र घटना का कारण आनुवंशिकता की शक्ति है और यह उन जंतुओं में देखी जा सकती है, जिन्हे अपने मूलस्थानों से पराये पर्यावरण में ले जाया गया है। कई-कई वर्षों के बाद भी इन पशुओं का अपने ही देश के कालक्रम के अनुसार जीवन-यापन करना जैव-आवर्तिता का, अर्थात प्राकृतिक पर्यावरण द्वारा युगो के दौरान किसी पशु मे उत्पन्न विशिष्टताओं की अभिव्यक्ति का एक सजीव प्रमाण है।

तथापि यह नही समझ लेना चाहिए कि इन प्रक्रियाओं को बदला नही जा सकता। १९३६ में, काले हंसों के साथ प्रयोग करते हुए हमने उन्हे वसंत के आगमन तक अपने घोंसले नही बनाने दिये। वे जो भी घोंसला बनाते, हम उसे नष्ट कर देते। आखिर वसंत मे हमने उन्हें तंग नही किया और तब उन्होंने अंडे दे दिये।

जैसे-जैसे वर्ष बीतते गये और काले हंसों की नई पीढ़ी बड़ी हो गई, उन्होंने वसंत में बर्फ़ का पिघलना शुरू होने के ठीक पहले अंडे देना शुरू कर दिया।

बिल्ली का यह न्यारा कुनबा

एक बार चार नवजात मुश्कबिलाव हमारे चिड़ियाघर में लाये गये, जिनकी अभी आंखें भी नहीं खुली थीं। हमने उन्हें एक सामान्य घरेलू बिल्ली को पालने के लिए दे दिया, जिसके खुद हाल ही में बच्चे पैदा हुए थे।

चिड़ियाघर के बाल-जीवविज्ञानी यह जानते थे कि पशु आंख की अपेक्षा गंध पर अधिक निर्भर करते हैं। इसलिए उन्होंने एक टब में पानी भरा और पहले उसमें बिल्ली के सभी बच्चों को नहलाया। इसके बाद उसी पानी में उन्होंने मुश्कबिलावों को भी नहलाया। यह कर चुकने के बाद उन्होंने बिल्ली के बच्चों और मुश्कबिलावों को बिल्ली के पास रख दिया। बिल्ली को पहले तो कुछ शक हुआ, मगर उसी पानी में नहाने के कारण मुश्कबिलावों की गंध भी उसके बच्चों जैसी ही हो गई थी, इसलिए उसने सभी को अपना ही मान लिया और सभी को चाट-चाटकर साफ़ करने लगी।
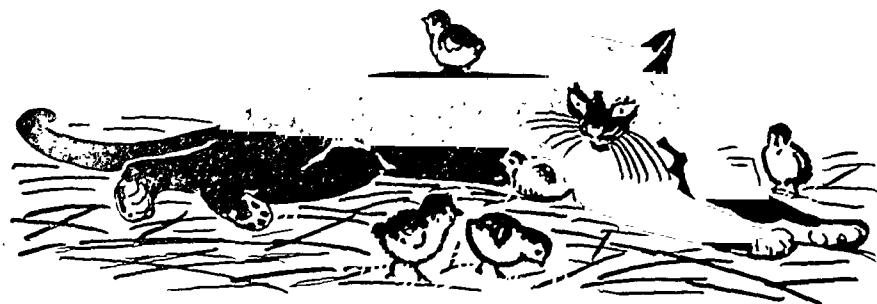
दिन बीतने के साथ पोषित मुश्कबिलाव बिल्ली की देखरेख निगरानी में बिल्ली के बच्चों के साथ खेलने लगे।

पालतू मुश्कबिलावों का इस तरह चिड़ियाघर में पालन हुआ। वे अपने घर से कभी ज्यादा दूर नहीं जाते थे। अलबत्ता, अनजान लोगों को देखकर वे गुर्राते और छिप जाते थे। लेकिन जब भी वे बाल-प्रकृतिविदों* की आवाज सुनते, जो उनके बड़े मित्र थे, वे तुरंत बाहर निकल आते और बड़े अनोखे तरीक़ों से अपना स्नेह जताते। बिल्ली अगर कोई चूहा पकड़ लेती और अपने सारे कुनबे को खाने के लिए बुलाती, तो मुश्कबिलाव ही सबसे पहले पहुंचते और सबसे बड़ा हिस्सा पाते।

एक बार कोई लोमड़ी अपने पिंजरे से निकलकर भाग आई और उनके घर मे आ घुसी। वह मुश्कबिलावों पर धावा बोलने को ही थी कि उनकी सौतेली मां उनकी रक्षा के लिए बीच मे आ कूदी। अपनी कमर तानकर उसने मुश्कबिलावों को अपनी आड़ में ले लिया और लोमड़ी की तरफ़ खूब गुर्राई और पंजे चलाने लगी।

कुछ समय बाद हमने इसी तरह का एक और प्रयोग किया।

हमारे बाल-प्रकृतिविदों ने चूहे का एक बिल देखा। उसे खोदते हुए वे बसेरे में पहुंच गये, जहां नौ नवजात अंधे चूहे गहरी नींद मे पड़े हुए थे।

एक चूहे को वे एक बिल्ली के पास ले गये, जिसने

---

*प्रकृतिविज्ञान मे रुचि लेनेवाले बच्चो के सगठन के सदस्य।—स०

अभी-अभी वच्चे दिये थे। विल्ली ने चूहे पर इतनी तेज़ी से झपट्टा मारा कि वालक उसे वड़ी मुश्किल से ही वचा सके।

अव उन्होंने हमारे पिछले प्रयोग को दुहराते हुए पहले विल्ली के वच्चों और फिर चूहे के सभी वच्चों को उसी पानी में नहलाया। इसके वाद सभी को विल्ली के नीचे धर दिया गया। विल्ली के भीगे हुए वच्चे वुरी तरह चिंचिया रहे थे, जिससे विल्ली की मातृवृति जागृत हो गई। उसने चाट-चाटकर अपने वच्चों और चूहों को सुखा दिया, क्योंकि नहाने के बाद चूहों की गंध भी उसी के बच्चों जैसी हो गई थी।

चिड़ियाघर आनेवाले लोग सदा उस पिंजरे के बाहर भीड़ लगाये रहते, जिसमें यह न्यारा परिवार रह रहा था और कितने ही संशयी यही भविष्यवाणी किया करते थे कि विल्ली थोड़े ही दिनों में "चालाकी समझ" जायेगी और चूहों को चट कर जायेगी। एक वुढ़िया वड़ी देर तक बिल्ली और चूहों को देखती रही और फिर नाराज़ी से बोली, "उफ़! वेचारे जानवर के साथ कैसी नीचता कर रहे हैं!"

हम उससे सहमत नहीं थे और अपने प्रयोग की सफलता से ख़ुश हो रहे थे।

चूहे बड़े हो गये और अपनी सौतेली मां और उसके वच्चों के साथ मज़े में रहते रहे। ठीक है, नौ चूहों में से केवल पांच ही वाक़ी रहे, मगर ये पांचों उनमें सवसे शक्तिशाली, मज़वूत और स्वस्थ थे। जो मर गये, वे कमज़ोर थे और उनमें से कुछ के मुंह इतने वड़े नहीं थे कि बिल्ली के स्तन से दुग्धपान कर सकें।

बिल्ली चूहों और अपने बच्चों के साथ एक-सा ही बर्ताव करती थी। वह उन सभी के लिए स्नेहमयी माता थी। अगर कोई चूहा ज्यादा दूर चला जाता, तो वह उसे नरमी से अपने दांतों में दबा लेती और वापस लाकर डलिया में धर देती।

बड़े हो जाने के बाद भी चूहे अपनी सौतेली मां के साथ शांतिपूर्वक रहते रहे। कभी-कभी वह अपनी पीठ के बल लेट जाती और उनके साथ खेला करती थी।

बिल्लियों की मातृ-प्रवृत्ति असाधारण रूप से विकसित होती है। कुछ वर्ष पहले मुझे साविनो स्टेशन के एक रेल-कर्मचारी की पत्नी का पत्र मिला था, जिसमे उसने यह बताया था कि किस तरह एक बिल्ली ने मुर्गी के चूजों को पाला था।

किसी दुर्घटनावश चूज़े जन्म के तुरंत ही बाद अनाथ हो गये। इस सुकुमार अवस्था मे उन्हें भोजन के अलावा गरमी की भी जरूरत थी।

यह गरमी उन्हें एक बिल्ली की देह से मिली।

उस स्त्री ने पांचों चूजों को उस बक्से मे रख दिया, जिसमें वह बिल्ली – मूर्का – अपने बच्चो के साथ पडी हुई थी। अचरज की बात, बिल्ली उनके साथ बिलकुल मा की तरह पेश आयी और जब वे चूं-चूं करते थे, तो वह उनको चाटती थी।

पांचों चूजों मे से एक नन्हा मुर्ग़ा ही बच पाया। वह बिल्ली के सभी बच्चों का गहरा दोस्त था और मूर्का ने, जो अपने बच्चों के लिए अकसर गौरैयां और दूसरे छोटे-छोटे पक्षी लाती रहती थी, कभी उसे मारने की कोशिश नही की।

इससे भी ज़्यादा आश्चर्यजनक कहानी स्वेर्दलोव्स्क प्रदेश के गारी नामक गांव से आये पत्र से सुनने को मिली।

कुछ बच्चों ने चूल्हे पर रखी पोस्तीन की टोपी को इनक्यूबेटर के तौर पर इस्तेमाल करके मुर्ग़ी के अंडों से तीन चूज़े प्राप्त किये। उनमें से एक ने सोचा कि इन चूज़ों को धुनैली नामक बिल्ली के सुपुर्द कर दिया जाये, जिसने कुछ ही पहले बच्चे दिये थे। बस, उन्होंने उसी दिन चूज़ों को उसके बच्चों के साथ रख दिया। धुनैली ने तुरंत उनको सूंघा और उनमें से एक को अपने दांतों में दबाने लगी। मगर इन बच्चों ने उसकी कसकर मरम्मत की और धुनैली को उनकी बात माननी पड़ी।

पहले दिन चूज़े कोई दो घंटे धुनैली के साथ रखे गये और बच्चे उस पर सख़्ती से नज़र रखे रहे। अगले दिन चूज़ों ने उसके साथ ज़्यादा वक़्त गुज़ारा। फिर, तीसरे दिन, बच्चों ने चूज़ों को रात भर धुनैली के साथ रहने देने का ख़तरा भी उठा लिया। प्रयोग पूर्णतः सफल रहा।

तीन सप्ताह गुज़र गये। चूज़े बिल्ली के बच्चों के साथ शांतिपूर्वक सोते और धुनैली उन सभी को समान स्नेह से चाटती। चौथे हफ़्ते के एक दिन दो चूज़े मरे हुए मिले। उनकी जान दुर्घटनावश चली गई थी – बिल्ली उन पर लेट गई थी, जिससे उनका दम घुट गया था।

जब बच्चों ने दोनों चूज़ों को मरा देखा, तो उन्होंने उन्हें भुसौरे के पीछे फेंक दिया। मगर धुनैली ने थोड़ी ही देर में अपने पोषितों को ढूंढ लिया और देर तक उन्हें इधर-

उधर पलटती सूंघती रही। वह वहां से चल पड़ती और फिर वहीं आ जाती, मानो उनसे अपने पीछे आने को कह रही हो। धुनैली को शांत करने के लिए बच्चों को चूज़ों को जमीन में दफ़नाना पड़ा।

एक चूजा बच रहा था। वह दो महीने—धुनैली के सारे बच्चों के बांट दिये जाने तक—उसके साथ-साथ ही रहा। इसके बाद भी बिल्ली और चूजा पक्के मित्र बने रहे।

भेड़िये भाई-बहन

मास्को के चिड़ियाघर में दो बच्चे भेड़िये लाये गये। वे दोनों भाई-बहन थे और उनके नाम थे कस्कीर और कस्कीर्का, कज़ाख़ भाषा में जिनका मतलब होता है "नर भेड़िया" और "मादा-भेड़िया"। इन्हें अराल सागर के उत्तर में स्थित रेगिस्तान में पकड़ा गया था।

मास्को के चिड़ियाघर में कितने ही भेड़िये आ चुके हैं और सभी अलग-अलग स्वभाव के थे। कुछ पकड़े जाने के समय वयस्क होने के बावजूद आसानी से पालतू बन जाते थे, जबकि कुछ छुटपन से ही ख़ून के प्यासे होते थे। कस्कीर और कस्कीर्का का व्यवहार पहले दिन से ही बहुत शांतिपूर्ण था और जल्दी ही वे पूरी तरह पालतू बन गये।

थोड़े ही दिन के भीतर मैं मज़दूर क्लबों, फ़ौजी इकाइयों और विद्यालयों में अपने भाषणों में भी उन्हें अपने साथ ले जाने लगा। दोनों को मेरे सहकारी बनने के अभ्यस्त होने में ज़्यादा देर नहीं लगी। वे ख़ुशी-ख़ुशी मेरी कार में उछलकर चढ़ जाते थे और भाषण देते समय मेरे सामनेवाली मेज़ पर बैठ जाते थे और मुझे तथा दर्शकों को ध्यानपूर्वक देखते रहते थे।

चिड़ियाघर के एक बड़े हाल में एक भाषण के समय बड़ी भीड़ थी।

में घरेलू कुत्ते की उत्पत्ति के बारे में बता रहा था और कस्कीर्का परदे के पीछे इस इंतजार में बैठी थी कि रखवाला उसे हाल मे ले जाये। जब उसे दर्शकों को दिखाने का समय आया, तो हमें पता चला कि वह ग़ायब हो गई है। उसे शायद घर के वियोग ने सताया था और इसलिए अपने पट्टे से छूटकर वह भाग गई थी।

हम बहुत चिंतित हो गये—उस दिन चिड़ियाघर दर्शकों से भरा हुआ था। मगर कस्कीर्का बिलकुल अपने ही मे रमी पार्क की भीड़ मे से लपकती सीधे अपने पिंजरे की तरफ़ चल दी। पिंजरे के बंद दरवाजे के आगे आकर वह खड़ी हो गई और प्रवेश दिये जाने के लिए याचना करने लगी।

एक और अवसर पर तो कस्कीर्का ने हमें और भी ज्यादा डरा दिया—वह शहर के एक निकटवर्ती हलके में भाषण-स्थल से भाग खड़ी हुई। मगर इस बार भी हमारा डर निराधार साबित हुआ। यद्यपि भाषण मे हम उसे कार मे बैठाकर ले गये थे, पर वह मास्को की सडको पर भागती सीधे चिड़ियाघर ही पहुची। वह किसीको खरोंच भी लगाये बिना अपने पिंजरे मे जा पहुंची।

सडको में किसीने भेड़िये की तरफ कोई ध्यान नही दिया—लोगों ने उसे एक लंबा-चौड़ा अल्सेशियन कुत्ता समझ लिया होगा।

ये भेड़िये भाई-बहन जिन लोगो को अच्छी तरह जानते थे, उनसे बहुत स्नेह करते थे। हमने इन कृपापात्र लोगों पर कुछ "आक्रमण" आयोजित किये और तब ये शरीफ़ प्राणी एकदम खूंख़्वार जानवर बन जाते थे।

अपने इरादों को किसी भी तरह ज़ाहिर किये बिना भेड़िये "हमलावरों" पर झपट पड़ते और अपने "दुश्मनों" को काफ़ी समय तक याद रखते। जब भी "हमलावर" भेड़ियों के पिंजरे के पास जाते, वे गुर्राने लगते और सींकचों के पीछे से उन पर झपटने की कोशिश करते।

कस्कीर और कस्कीर्का बड़े-बड़े भेड़िये हो गये, मगर फिर भी ज़ंजीर के भी बिना उनके साथ शहर के बाहर जाया जा सकता था। इस तरह हमने इस रूसी कहावत को झूठा सिद्ध किया कि "भेड़िये को चाहे कैसा ही अच्छा क्यों न खिलाओ, वह सदा जंगल वापस पहुंचने की ही कोशिश करेगा।" दोनों भेड़ियों ने मनुष्यों के पास से भागने की कोई कोशिश नहीं की।

भेड़ियों और उनके तौर-तरीक़ों के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि कोई बीस हज़ार वर्ष पहले इन जानवरों को मनुष्य ने साधा और पालतू बनाया था और उन्होंने ही घरेलू कुत्तों की उन अनेक नसलों को पैदा किया, जिनसे हम आज परिचित हैं।

चिड़ियाघर में आनेवाले लोग अगर काफ़ी चौकस हों, तो वे इस बात को ख़ुद भी देख सकते हैं कि बाहरी समानता के बावजूद भेड़ियों के स्वभाव में बहुत विभिन्नता होती है। इन विभिन्नताओं ने ही सुदूर अतीत में हमारे पुरखों के लिए कुत्तों

की विभिन्न नसले पैदा करने के लिए ग्रानुवंशिक परिवर्तनों के नमूने चुनना संभव बनाया। प्रसंगवश बता दे, किसी भी भेड़िये को इतना साधा जा सकता है कि वह स्लेजों में जुतनेवाले कुत्तों की टोली में इस्तेमाल किया जा सके। सुदूर उत्तर में पालतू भेडिये बढ़िया से बढ़िया कुत्तों से बेहतर साबित होंगे, क्योंकि वे ज़्यादा मजबूत ग्रौर हृष्ट-पुष्ट होते है।

यद्यपि घरेलू कुत्ते, जो मनुष्य के मित्र है, सधाये ग्रौर पालतू किये भेडियों के ही वंशज है, मगर जगली अवस्था मे खुद भेडिये पशुपालन ग्रौर शिकारी जिलों को इतना नुकसान पहुंचाते है कि उनको मारने का हवाई जहाज से गोली से उडाने सहित हर तरीका जायज है।

पागल सील

दरवंत शहर के निकट कास्पियन सागर में एक बार एक अद्भुत घटना घटी। एक स्थानीय वैज्ञानिक ने मुझे इसकी कहानी सुनाई थी, जो इस प्रकार है।

एक आदमी, जो तैरना नहीं जानता था, फुलाये हुए टायर-ट्यूब को पकड़कर उसके सहारे गहरे पानी में चला गया। अचानक एक कास्पियन सील सतह पर आई और उस बेचारे पर टूट पड़ी। संकट की इस घड़ी में आदमी ने अपने शरीर की परवाह किये बिना अपने ट्यूब की वीरतापूर्वक रक्षा की और अपने घूंसों से सील का मुक़ाबला किया।

"बचाओ! बचाओ!" उसकी पुकार काफ़ी दूर तक चली गई।

उसकी चीख़ को कुछ मछियारों ने सुन लिया, जिनकी नाव वहां से ज़्यादा दूर नहीं थी। युद्ध-स्थल पर उनके पहुंचने

के साथ ही सील ने ट्यूब को फाड़ दिया। वह बेचारा पत्थर की तरह समुद्र के पेंदे में जा बैठता, पर मछियारों ने उसे वक़्त पर बचा लिया। उसकी टांगों को सील ने बेतरह काट लिया था और उनसे बुरी तरह खून बह रहा था।

एक मछियारे ने सील के सिर पर अपने चप्पू से चोट की। उसने गोता मारा और तट की तरफ़ तैरकर चली गई। जब वह घिसटकर तट पर आई, तो मछियारों ने चाकू से उसे मार डाला।

मुझसे कहा गया कि मैं कास्पियन सील के इस असाधारण आचरण का कारण बताऊं। सील के आदमी पर हमला करने की बात मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी, इसलिए मैंने बड़े-बड़े अधिकारी विद्वानों से, जिन्होंने विभिन्न समुद्रों की सीलों का अध्ययन किया था, इस बारे में पूछा। उनमें से कोई मेरी सहायता न कर पाया। तब मैंने महसूस किया कि समय को जरा भी गंवाया नहीं जा सकता।

"सील पागल थी," मैंने इस बेचारे स्नानी को तार दिया, "टीके लगवाना अत्यावश्यक है।"

मगर सील को अलर्क रोग कहां से हुआ? शायद उस सील को, जो तट पर बहुत ही सुस्त होती है, धूप सेंकते समय किसी पागल गीदड़ ने काट लिया होगा। यह विचार

भेंट कर दिया गया। इतने बड़े जानवर को मास्को भेजना एक ख़ासी समस्या बन गया। मालगाड़ी के डिब्बे उसके लिए छोटे पड़ते थे और बिना दीवारों और छतवाले डिब्बे पर सवार करके उसे मास्को ले जाने की बात हम सोच भी नहीं सकते थे। आख़िर हमने बिना दीवारवाले एक बड़े डिब्बे पर जीनदा के लिए एक विशेष निवास बनाने का निश्चय किया।

पहियोंवाले इस मकान के बन जाने के बाद हमारे सामने यह विकट समस्या पैदा हुई कि जीनदा को उसमें घुसायें कैसे। प्लेटफ़ार्म छोड़ने के पहले उसने अपने पैरों और सूंड से उसके फ़र्श की अच्छी तरह आज़माइश की। उसके भीतर घुसने के साथ दरवाज़ा बंद कर दिया गया।

इंजन-ड्राइवर गाड़ी को जितना हो सकता था, उतने आहिस्ते-आहिस्ते चला रहा था, मगर इस अपरिचित अनुभूति से जीनदा चौंक गई। वह इतनी उत्तेजित हो गई कि उसने मज़बूती से बने इस डिब्बे को कुछ ही मिनटों के भीतर तोड़-फोड दिया। मगर जैसे ही उसे ऊपर आकाश दिखाई दिया, वह शांत हो गई। इसलिए आख़िर हम उसे मास्को खुली, बिना दीवारों और छतवाली गाड़ी में ही ले गये।

सफ़र भर जीनदा का आचरण बहुत ही अच्छा रहा। उसे ऊपर पुल नज़र आता, तो वह पिछली टांगों के बल बैठ जाती। सामने की तरफ़ से कोई रेलगाड़ी आती, तो वह डिब्बे में दूसरी तरफ़ चली जाती।

जीनदा जैसे असाधारण यात्री के सफ़र करने की ख़बर स्टेशन-स्टेशन होकर ख़ुद रेलगाड़ियों की अपेक्षा बहुत तेज़ी के

साथ जा रही थी। इसलिए जीनदा को देखने के लिए लोगों की भीड़ लग जाया करती थी। वह विश्वासपूर्वक अपनी सूंड उनकी तरफ बढ़ाकर रोटी और ख़रबूज़ों जैसी स्वादिष्ट चीजों की मांग किया करती थी।

एक स्टेशन पर जीनदा दर्द से चीख पड़ी और उसने भीड़ में से एक मोटे-ताजे आदमी को अपनी सूंड से उठा लिया और भीड के ऊपर से रेलवे लाइन के पास झाड़ियों के एक झुंड में फेंक दिया। ख़ुशक़िस्मती से आदमी को ज्यादा चोट नहीं लगी – कुछ खरोचों और गुमडों से ही उसे छुटकारा मिल गया। उसने कबूल किया कि उसने हथनी की सूड में सूई चुभाई थी।

७ जुलाई, १९२४ को गाड़ी मास्को पहुंची। सुबह ३ वजे जीनदा का महावत उस पर सवार हो उसे मास्को की सड़कों
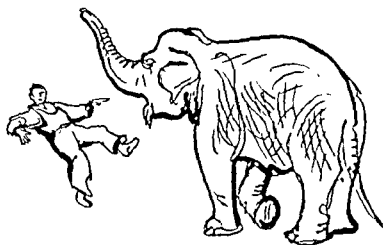
पर होते हुए चिड़ियाघर में उसके नये घर की तरफ़ ले चला।

इतनी सुवह भी ख़ासी वड़ी भीड़ हथनी के पीछे-पीछे चिड़ियाघर के फाटक तक गई।

जीनदा में अद्भुत शक्ति थी। जव वह घूमने के लिए जाना चाहती थी, तो वेसब्री से अपने वाड़े की लोहे की मोटी-मोटी छड़ों को टेढ़ा कर देती थी। एक बार उसके बाड़े का भारी सरकवां किवाड़ अपनी पटरी से उतर गया। कई लोगों ने मिलकर सव्वलों के सहारे उसे पटरी पर फिर चढ़ाने की कोशिश की, मगर वे उसे टस से मस भी न कर सके।

घंटे भर से ज़्यादा वे इसी काम में लगे रहे, मगर असफल रहे। फाटक का वज़न एक टन के क़रीव था। उनमें से एक आदमी ने मज़ाक में जीनदा को मदद के लिए वुलाया। हथनी फ़ौरन आ गई, सावधानी के साथ उसने आदमियों को अलग सरकाया और दरवाज़े को अपनी सूंड से धकेला। वह फ़ौरन अपनी जगह जाकर बैठ गया।

सोते समय जीनदा करवट पर लेटकर अपनी टांगों को फैला देती थी। सारी इमारत उसके खर्राटों से गूंजने लगती थी। मगर अगर वह किसी बात से चौंक उठती, तो इतनी तेज़ी के साथ उछलकर खड़ी हो जाती थी कि इतने भारी-भरकम और देखने में सुस्त जानवर में उसकी कल्पना भी करना मुश्किल है।

जंगली हाथियों को अपने खुरों और पैरों के तलुओं की परवाह नहीं करनी पड़ती, क्योंकि वे पत्थरों और ऊबड़-खाबड़ ज़मीन से घिसते रहते हैं। मगर क़ैद में उनको काटते रहना ज़रूरी हो जाता है। जीनदा इस काम को बड़ी धीरता के साथ

करवाती थी। अगर यह बहुत ही तक़लीफ़देह हो जाता, तब ही वह फ़र्श पर अपनी सूंड को गुस्से में फटफटाकर अपनी नाराज़ी ज़ाहिर करती थी।

एक बार हुआ यह कि इस काम को करनेवाले आदमी ने न इस अनिष्टसूचक फटफट की तरफ़ ध्यान दिया और न जीनदा की ऊंची और धमकी भरी चिंघाड़ की ही तरफ़। वह उसके खुरों को घिसता ही रहा। इस पर जीनदा ने उसे सावधानी के साथ गर्दन से उठाया और बाड़े के बाहर फेंक दिया।

चिड़ियाघर में अपने अंतिम दो वर्षों में जीनदा पर ५२ वर्ष की अवस्था में प्रत्यक्षतः बुढ़ापा आने लगा। वह अक्सर बीमार रहती थी, ज्यादातर लेटी रहती थी और पैरों को घसीटती हुई चला करती थी। हाथियों के बाड़े की मरम्मत जरूरी हो गई थी, इसलिए उन्हें मृगों के बाड़े में पहुंचा दिया गया। हाथियों को वहां अच्छा नहीं लगता था और जीनदा को तो वहां लेटना तक पसंद नहीं था। वह अपने चौड़े माथे को लोहे के मोटे जंगले पर टिकाकर खड़ी-खड़ी ही सोती थी और जंगला उसके भार से झुक जाता था।

दिसंबर, १९३९ में जीनदा आख़िरी बार लेटी। उसकी सहेली, जवान हथनी मान्का, बहुत ही परेशान नजर आती थी। उसने जीनदा की बूढ़ी टांगों को अपनी सूंड से रगड़ा और उठने में मदद देने की कोशिश की। मगर जीनदा तेज़ी के साथ अशक्त होती जा रही थी।

दो दिन बाद, २३ दिसंबर को वह मर गई।

शव-परीक्षा से पता चला कि उसकी चारों बड़ी-बड़ी दाढ़ें जड़ तक सड़ गई थीं।

बुढ़ापे में जीनदा ने अपने खाने को चबाना बंद कर दिया था – वह उसके खोखले दांतों और उनके तथा मसूड़ों के बीच की जगहों में घुस जाता था।

उसके सभी अंग बुरी तरह क्षय हो चुके थे। उनका आकार आश्चर्यजनक था। उदाहरण के लिए, हर गुर्दे का वज़न १६ किलोग्राम था, तिल्ली २ मीटर लंबी थी, श्वासनली का व्यास ७ सेंटीमीटर था। उसकी आंतों की कुल लंबाई ३० मीटर से अधिक थी।

उसके फेफड़ों का वज़न लगभग १०० किलोग्राम था। सबसे अचरज की बात यह थी कि जीनदा के मस्तिष्क का भार ४-५ किलोग्राम के लगभग था, अर्थात हाथियों के दिमाग़ के औसत भार से कोई डेढ़ किलोग्राम ज़्यादा।

बहुत से लोगों को हमसे यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि जीनदा की मृत्यु बुढ़ापे के कारण हुई है।

"अरे, उसकी उम्र तो ५५ साल भी नहीं थी। क्या आप इसी को बुढ़ापा कहते हैं! हमने तो सुना है कि हाथियों की उम्र २०० साल होती है!"

मगर तथ्यों से पता चलता है कि हाथियों की दीर्घजीविता की यह धारणा अतिरंजित है। सर विलियम फ़्लाअर के अनुसार यूरोप के विभिन्न चिड़ियाघरों में रहनेवाले ४४ भारतीय हाथियों में से सिर्फ़ एक ही हाथी चालीस वर्ष की अवस्था तक ज़िंदा रहा और तीन हथनियों ने पचास या इकावन की उम्र प्राप्त की।

अगर हम हिंदुस्तान में हाथियों की वास्तविक आयु जानने की कोशिश करें और कही-सुनी बातों पर विश्वास न करें, तो हमें पता चलेगा कि वहां भी वे कोई ज्यादा नहीं जीते। हो सकता है कि हाथी ६० वर्ष की अवस्था तक जी लें, मगर ऐसा कोई मामला अब तक दर्ज नहीं किया गया है।

आम तौर पर यह विश्वास करना कठिन है कि ये जानवर इससे भी ज्यादा जी सकते हैं, क्योंकि वे बड़ी हद तक अपने दांतों पर ही निर्भर करते हैं। हाथियों के केवल चार दाढ़ें ही होती हैं—हर जबड़े पर एक-एक जोड़ा। इन दांतों से वे चक्की के पाट की तरह मोटी-से-मोटी डालियों को भी चबा डालते हैं। ये दाढ़ें धीरे-धीरे घिस जाती हैं और उनकी जगह नई दाढें निकल आती हैं। हाथी के जीवन-काल में ऐसा छः बार होता है। अंतिम दाढ़ तब निकलती है, जब हाथी लगभग ४० साल का होता है और यह कोई १० बरस चलती है।

जीनदा के दांत आखिरी बार उसकी मृत्यु के लगभग ११ साल पहले निकले थे। इस तरह यह वयोवृद्धा हाथियों से अधिक ही दिन जिंदा रही थी।

खोदू कुत्ते

ओरेनबुर्ग का बूचड़ख़ाना शहर के सिरे पर, एक गहरे खड्ड के पास था। डाक्टर जिन कटे हुए जानवरों को खाने योग्य नहीं समझते थे, उनकी लाशें खड्ड में गाड़ दी जाती थीं।

पहले ये लाशें उथले गढ़ों में गाड़ी जाती थीं, मगर इन लाशों को खोदने के लिए खड्ड के पेंदे में कुत्तों के झुंड इकट्ठा हो जाया करते थे। यह नहीं होने दिया जा सकता था, क्योंकि कुत्तों द्वारा दूषित मांस से छूत का फैल जाना निश्चित था।

इसलिए कई-कई मीटर गहरे गढ़े खोदे जाने लगे, मगर इससे भी कोई फ़ायदा नहीं हुआ। कुत्ते अब भी लाशों को खोद निकाल लेते थे।

ओरेनबुर्ग में कई लोगों ने कुत्तों को अपने काम में जुटे

देखा था। एक प्रत्यक्षदर्शी ने इन खोदू कुत्तों की "कार्यविधि" का इस प्रकार वर्णन किया है: "मुझे यह देखकर अचरज होता था कि उनका काम कितनी

अच्छी तरह संगठित था। जैसे ही एक कुत्ता थकने के आसार दिखाता, झुंड में से कोई और उसकी जगह ले लेता और गढ़ा गहरा ही होता चला जाता . . ."

उनकी "कार्यविधि" से मुझे अचरज नहीं हुआ, क्योंकि अपनी शिकार यात्राओं के दौरान मैं कुत्तों को अकसर सख्त धरती तक में बड़े-बड़े गढ़े खोदते देख चुका हूं।

कुत्ते किसी छोटे जानवर का पीछा करके उसे किसी गहरी माद या बिल में जा छिपने को विवश कर देते हैं और फिर अपने अगले पंजो से तेजी से खुदाई के काम में लग जाते हैं। यह काम बहुत मुश्किल है और कुत्ता जल्दी ही थक जाता है। भारी-भारी सांस लेता हुआ वह आराम करने के लिए पास पड जाता है और उसकी जगह कोई और कुत्ता ले लेता है। आम तौर पर इस अदला-बदली मे जरा भी देर नहीं लगती।

जीभें लटकाये आराम करते ये चौपाये बेलदार खुदाई में लगे कुत्ते को देखते रहते हैं और जैसे ही वह थकने लगता है, उसकी जगह ले लेते हैं।

गंधहीन बतखें

"मैंने जो यह शिकारी कुत्ता लिया है, किसी काम का नहीं है। बतख़ अपने अंडों पर बैठी थी और यह गधा उससे दो क़दम की दूरी से निकल गया!" एक नाराज़ शिकारी कह रहा था।
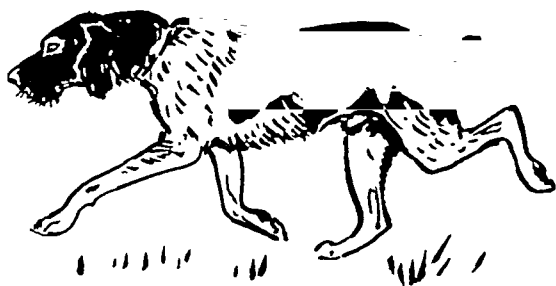
उस "गधे" का कोई क़सूर न था। अपने अंडों पर बैठी बतख़ की गंध ले पाना लगभग असंभव है।

पक्षियों के बदन पर दुम के आधार के ठीक ऊपर एक दुहरी ग्रंथि के अलावा न वसा-ग्रंथियां होती हैं और न स्वेद ग्रंथियां। इस दुहरी ग्रंथि को अनुत्रिक ग्रंथि कहते हैं और यह एक सुगंध वसीय पदार्थ स्रावित करती है। पक्षी अपनी चोंचों से इस ग्रंथि को दबाकर वसा को निकाल लेते हैं और उससे अपने पंखों को चिकना लेते हैं। तैरनेवाले पक्षी घंटों पानी में बिना भीगे तैर सकते हैं। इसीसे यह कहावत पैदा हुई है "बतख़ की पीठ पर पानी की तरह।"

चिड़िया जिस समय अपने अंडों पर बैठी होती है, तब वह अपने पंखों को नहीं चिकनाती और

इसलिए उसकी वह गंध ख़त्म हो जाती है, जिससे कुत्ता काफ़ी दूर से उसका पता चला सकता है। यह विशेषता पंखदार परिवारों की उस काल में रक्षा करती है, जब वे सबसे अधिक निरुपाय होते हैं – जब वे गंध नहीं देते, तब उनके दुश्मन अकस्मात ही उन तक पहुंच सकते हैं। इसके अलावा, अगर मादा बतख़ अंडे सेते समय अपने पंखों को चिकनाती, तो उन पर वसा की परत चढ जाती, जिससे अंडों के आवरण के वे रंध्र बंद हो जाते, जिनसे भ्रूण आक्सीजन प्राप्त करता है और बेचारा चूज़ा पैदा हुए बिना ही मर जाता।

जैसे ही चूज़े अडो से निकलते हैं, उनकी मा अपने को सजाना शुरू कर देती है। एक बार फिर वह जल्दी-जल्दी अपने पंखों को चिकनाती है। वह अपनी दुम के ऊपरवाली नन्ही-सी ग्रंथि से वसा की जिस बूद को पिचकाकर निकालती है, वह उसकी चोंच के शृंगीय खांचो पर फैल जाती है। बतख़ अपने हर पख को अपनी चोंच से उसी तरह निकालती है, जैसे उन पर कंघी कर रही हो। सबसे बाद मे सिर और गरदन की बारी आती है। इन्हे वह अपने शरीर के चिकनाये पंखों पर रगड़कर चिकना लेती है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि इनक्यूबेटर मे पैदा हुए चूज़े तालाब मे उतरने पर जल्दी ही गीले हो जाते हैं और डूब तक जाते हैं, जबकि अपनी मांओं के पाले-पोसे चूज़े जरा भी गीले हुए बिना घंटो तैरते रहते हैं।

इस बात को समझना मुश्किल नही है। अपनी मां के बदन से अपने को गरमाते समय ये चूज़े अपने रोये को उसके

चिकनाये हुए पंखों से रगड़ते हैं और इस तरह अपनी तालाब की निरापद यात्रा सुनिश्चित कर लेते हैं। इसके विपरीत, मातृहीन, इनक्यूबेटर जनित चूज़ों को वसा का यह स्रोत नहीं मिल पाता और वे अपने को अच्छी तरह नहीं चिकना पाते। उनका रोयां गीला और भारी हो जाता है और वे पेंदे में जा बैठते हैं। अगर वे किसी तरह किनारे पर आ भी लगें, तब भी अकसर ठंड के कारण मर जाते हैं।

इस बात की जांच करने के लिए हमने अपने अंडों पर बैठनेवाली कई बतख़ों के और कुछ उन बतख़ों के पर उखाड़े, जिन्होंने अभी अंडे देना शुरू नहीं किया था। पंखों के विश्लेषण से (सोक्सलेत उपकरण में) पता चला कि पहले मामले में उनमें चिकनाई लगभग बिलकुल ही नहीं थी, जबकि दूसरे मामले में वे ख़ूब चिकनाये हुए थे।

विज्जुओं का धूप-स्नान

यह आम तौर पर ज्ञात है कि कोई भी स्तनपायी जीव सूर्य के प्रकाश के बिना ठीक से विकास नहीं कर सकता। लेकिन अगर बात यही है, तो विज्जू जैसे जानवर, जो अंधियाले बिलों में रहते हैं और सूरज छिपने के बाद ही बाहर निकलते हैं, किस तरह अपने बच्चों का पालन-पोषण करते हैं? जैसा कि तुम जानते हो, उनके जमीदोज घरों में खिड़कियां तो होती नहीं, जबकि नन्हे विज्जुओं को भी धूप की उतनी ही जरूरत होती है, जितनी कि किसी भी दूसरे नन्हे जानवर को।

इस सवाल ने चिड़ियाघर के बाल-जीवविज्ञानियों की दिलचस्पी को जगा दिया। बच्चों ने एक विज्जू निवास के पास दिन-रात चौकसी की और उन्होंने यह जानकारी हासिल की।

धूपदार सुबहों को मादा विज्जू अपने बच्चों को धूप-स्नान के लिए बाहर लाती थी। उन्हें वह एक-एक करके, बड़ी सावधानी के साथ अपने दांतों में पकड़े-पकड़े ऊपर लाती थी और किसी धूप भरी सपाट जगह ले जाती थी। वह उन्हें कभी

चिलचिलाती धूप में नहीं छोड़ देती थी, बल्कि किसी पेड़ या झाड़ी के नीचे चित्तीदार छांह में ही रखती थी।

कहावत है कि हर चीज़ ठीक ही मिक़दार में होनी चाहिए और धूप-स्नान के बारे में तो ये शब्द ख़ास तौर पर सही हैं। जैसे ही बच्चे अपनी ऊंची आवाज़ करके यह जताते कि उन्हें काफ़ी धूप मिल चुकी है, मां उन्हें तेज़ी से बिल में वापस ले जाती। कभी-कभी तो वह इतनी जल्दी में होती थी कि वह दो-दो बच्चों को एक साथ उठाकर ले जाती थी।

यह जल्दबाज़ी बिलकुल उचित थी, क्योंकि अंधेरे के आदी इन नन्हे जानवरों को अकसर सख़्त आतपघात हो जाता है। उदाहरण के लिए, हमारे चिड़ियाघर में दो बाल चीतों को
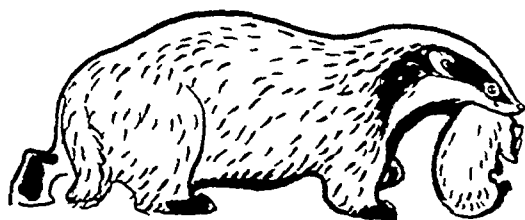
जब पहली बार उनके पिंजरे से धूप में ले जाया गया, तो वे आतपघात के कारण मर गये। एक बंदर, एक अफ़्रीकी सांप और एक महाकाय गोह तक के साथ यही हुआ, जिन्होंने सारी सरदी धूपहीन निवासों में ही बिताई थी।

धूप सभी जानवरों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, लेकिन अधिक मात्रा में यह ख़तरनाक होती है। जानवर को इसका आदी होना चाहिए, त्वचा के अरक्षित भागों का धीरे-धीरे

आतपदाह होना चाहिए। आतपदाह एक तरह का रंगीन छन्ना है, जो परावैंगनी किरणों सहित प्रकाश की किरणों को सही मात्रा में प्रवेश देता है।

मादा इस बात का ध्यान रखती है कि बाल बिज्जुओं को धूप की उतनी ही मात्रा प्राप्त हो, जिससे उनके स्वास्थ्य या जीवन का खतरा न हो। उसका आचरण प्राकृतिक वरण द्वारा निर्धारित किया गया है, जिसमें वही जानवर बच सके, जो अपने पर्यावरण के लिए सबसे अधिक अनुकूलित थे।

शरतकालीन आहार
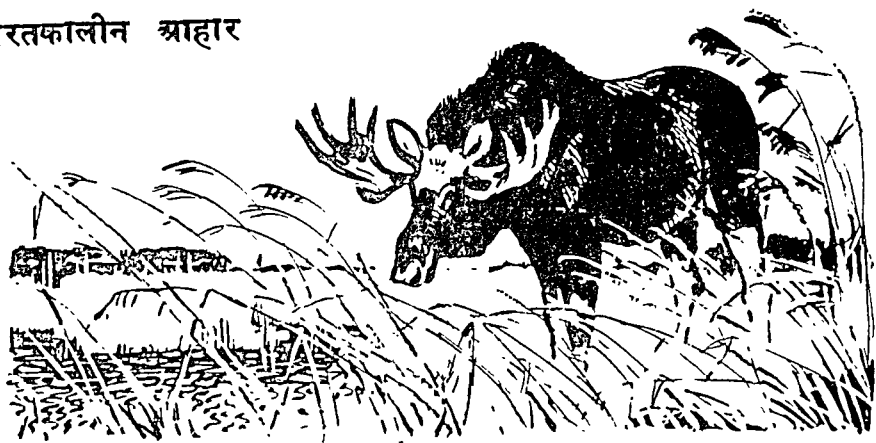
हर गरमी में आंतों के कीड़े सफ़ेद, भट और काले तीतर, और काले मुर्ग़ जैसे जंगली पक्षियों को बहुत परेशान करते हैं।

तुम शायद सोचो कि सरदियों में, जब खाने की क़िल्लत हो जाती है, इन पक्षियों का मर जाना अनिवार्य है, क्योंकि उनकी ताक़त को इन परजीवियों ने क्षीण कर दिया होगा। लेकिन ऐसी बात नहीं है। जैसे ही जंगल में बेरियों और घास पर बर्फ़ जम जाती है, पक्षी अपना आहार बदल देते हैं, जो उनकी अपने पेट से गोल और चपटे दोनों ही तरह के कृमियों को निष्कासित करने में सहायता करता है। उनके शरतकालीन आहार में, उदाहरण के लिए, चीड़, देवदारु और लार्च की पत्तियों जैसी शंकुल वनस्पतियों की बड़ी मात्रा होती है। इन पत्तियों में जो राल होती है, उसमें रेज़िन वर्गीय पदार्थों, फ़ीटोनसाइड और टैनिन की प्रचुरता होती है। इससे कृमि

मुन्न हो जाते हैं और अनपचे खाने के साथ निष्कासित हो जाते हैं।

पक्षी शंकुल वृक्षों की पत्तियों को अंशतः ही हज्म करते हैं (१०-१५ प्रतिशत तक)। शेष भाग बड़ी आंत में जमा हो जाता है। जैसे ही पक्षी मोटा खाना खाने लगते हैं, कुछ दिनों के भीतर उनकी आंतों को परजीवी कृमियों से मुक्ति मिल जाती है। बस कुछ फ़ीता कृमियों के सिर ही पक्षियों की आंतों की दीवारों से चिपके रह जाते हैं, जबकि उनके शरीर बाहर धकेल दिये जाते हैं। जीवन के युगों पुराने संघर्ष का नतीजा यह रहा कि जीवित बच पानेवाले पक्षी केवल वे हैं, जो शरद में शंकुल खाद्य खाते थे और जिन्होंने यह स्वभाव या प्रतिवर्त अपनी संतति को हस्तांतरित कर दिया।

चिड़ियाघरों मे जंगली तीतर और मुर्गियां शरद में चीड़ की पत्तियां खाये बिना ही कृमियों से बच जाती हैं, मगर यह एक बहुत ही लंबी प्रक्रिया है और इसका परिणाम अनिश्चित होता है।

तृणभक्षी स्तनपायी जंतुओं के भी अपने-अपने मौसमी "औषधिक" आहार होते हैं। उदाहरण के लिए, स्तेपियों में गायें तथा अन्य खुरदार जानवर शरद में नागदौना खाते हैं।

इस कड़वे पौधे के ऐरामेटिक तेल वहुत ही बढ़िया कृमिनाशक हैं। इस के बिना जानवर सरदियों के अल्प और घटिया चारे पर वसंत तक जी न पाते। इस तरह नागदौना कई जानवरों की जान बचाता है।

एल्क कृमियों को निष्कासित करने के लिए बकवीन नामक एक दलदली पौधा खाते हैं। कई प्रकार के हिरन कुटकी नामक पौधे को पसंद करते हैं, जो घोड़ों के लिए ज़हर होता है।

तालाब जिंदगी से खुदबुदा रहा था, मुर्गाबियां सारे चिड़ियाघर को अपने शोर से गुंजा रही थीं।

मैं अपने एक बाल-जीवविज्ञानी के साथ तालाब के किनारे पर घूम रहा था। अचानक हमारी निगाह पानी में डूबे एक छोटे-से बिल्ली के बच्चे के शरीर पर पड़ी, जिसकी अभी आंखें भी नहीं खुली थीं। वह किनारे के पास ही पेंदे में पड़ा था और पानी में से उस पर सूरज का झिलमिल प्रकाश पड़ रहा था। उसके नन्हे-से शरीर पर शैवाल की हरी परत जम गई थी।

मेरे साथी ने बच्चे को निकाल लिया। उसमें जीवन का कोई भी लक्षण नहीं था और लगता था, जैसे उसे डूबे कई दिन हो चुके हैं।

हमारे जांच करते-करते उसकी नाक से पानी बाहर निकल गया और उसका बदन हमारे हाथों में गरमा गया। अचानक हमें लगा कि वह फड़क रहा है...
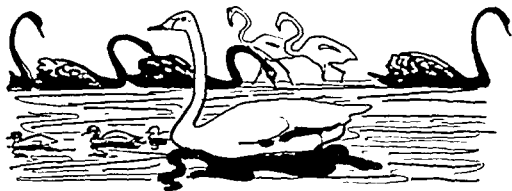
बिलौटा धीरे-धीरे फिर जीवन पा रहा था।

हमने उसे उसी बिल्ली के सुपुर्द कर दिया, जो कई मुश्कबिलावों को पाल रही थी। उसकी बदौलत बिलौटा जल्दी ही ठीक हो गया और बड़ा होने के बाद वह हमारे एक विज्ञानकर्मी के घर रहने लगा।

बिलौटा इतनी आसानी से क्यों ठीक हो गया, जो तालाब में बिलकुल पानी की तरह ही ठंडा हो गया था?

इसलिए कि भ्रूण में सभी जंतु एक तरह से अपने सुदूर पूर्वजों के विकास की पुनरावृत्ति करते हैं। अपने प्रारंभिक दिनों में बाल-जंतु वयस्क जानवरों से बहुत भिन्न होते हैं और कुछ मामलों में अपने आदिम पूर्वजों से मिलते-जुलते हैं, जो पशु-विकास की एक निम्नतर मंज़िल का प्रतिनिधित्व करते थे। उदाहरण के लिए, अधिकांश स्तनपाइयों का ३७-३८ सेंटीग्रेड के लगभग स्थिर दैहिक ताप होता है, मगर उनके बच्चे, विशेषकर जो अंधे पैदा होते हैं, अगर उन्हें बाहरी गरमी न मिले (अगर वे अपने जनकों से चिपटकर अपने आपको गरम नहीं करते), तो वे तेज़ी के साथ ठंडे हो जाते हैं। वयस्क कुत्ते की देह को उसके मरे बिना २७ सेंटीग्रेड तक ठंडा करना शायद ही संभव है, मगर नवजात पिल्लों का दैहिक ताप १० सेंटीग्रेड या उससे भी नीचे ले जाया जा सकता है। वे बिलकुल अकड़ जाते हैं, मगर गरमाने पर फिर जी उठते हैं। हमें ऐसे कई मामलों की जानकारी है, जिनमें जंगली जानवरों के बड़े-बड़े समूहों को इतने नीचे ताप तक ठंडा किया गया था कि वे मृत लगने

लगे थे। मगर गरमी से उनमें जीवन लौट आया और बाद में उन्होंने सामान्यरूपेण विकास किया।

एक विशेष ठंडी रात के बाद चिड़ियाघर में सुबह दो यूरोपीय मिंक सरदी से जमकर मर गये से लगते थे। मगर गरम चूल्हे पर रख देने से उनको "पुनर्जीवन" प्राप्त हो गया।

बेशक, इस तरह का "पुनर्जीवन" केवल तब ही संभव है कि जब बाल-जंतु वास्तव में मरे नहीं हैं, बल्कि अतिमूर्च्छा में ही पड़ गये हैं। कई छोटे-छोटे ख़रगोश, जिनके अभी बाल भी नही उगे थे, हिमांक से भी नीचे ताप तक ठंडे कर दिये गये। फिर भी, जब उन्हें गरम कमरे में लाया गया, तो वे सांस लेने लगे और गरम होते ही वे अपनी मां के स्तनों से दूध पीने लगे।

पक्षियों के बारे में तो यह बात और भी ज्यादा सही है, जिनके सुदूर पूर्वज प्राचीन सरीसृप भी थे, जिनका दैहिक ताप स्थिर नहीं होता था। मगर यह वयस्क पक्षियों के दैहिक ताप के ऊंचे होने में बाधक नही होता। मिसाल के लिए, कुछ छोटे पक्षियों का दैहिक ताप तो ४४ सेंटीग्रेड तक होता है। लेकिन कई और बातों में पक्षी सरीसृपों से मिलते-जुलते हैं। पक्षियों तथा सरीसृपों, दोनों ही की त्वचा में बस, दुम की जड़ के पास अनुत्रिक ग्रंथि के सिवा स्वेद और वसा ग्रंथिया नहीं होतीं। पक्षियों और सरीसृपों, दोनों ही के मल में यूरिक अम्ल होता है। टिकरी, कैमा और शुतुरमुर्ग जैसे कुछ पक्षियों के डैनों पर अभी तक आद्यांगिक नख हैं और सभी

पक्षियों के पैरों पर शृंगीय शल्क होते हैं। उन पक्षियों की, जो अंधे और रोमहीन पैदा होते हैं, सरीसृपों से अद्भुत समानता होती है – अगर उनके पास अपने को गरमाने को कुछ भी न हो, तो वे तेज़ी के साथ ठंडे होने लगते हैं और उनमें जीवन का कोई भी लक्षण मुश्किल से ही नज़र आता है। मगर अगर उनकी देखभाल करके उन्हें फिर जिला लिया जाये, तो वे कहीं अधिक सक्रिय हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, न० कालावूख़ोव और न० रियूमिन नामक दो विज्ञानकर्मियों ने, जो कभी मास्को के चिड़ियाघर के बाल-जीवविज्ञानी मंडल के सदस्य थे, गौरैया के बच्चों को ५ सेंटीग्रेड के ताप तक ठंडा किया।

गौरैयां बिलकुल जमे हुए मुर्दों जैसी नज़र आती थीं, मगर जब उन्हें गरमी दी गई, तो वे जल्दी ही ठीक हो गईं और अपनी नन्ही-नन्ही चोंचें खोलकर खाना मांगने लगीं।

ठंडे दिनों में मुझे अकसर अंडों से अभी-अभी निकली ऐसी कस्तूरिकाएं और तूतियां मिली हैं, जो अपने मां-बाप के डर के मारे घोंसले से भाग जाने के कारण अतिमूर्च्छा में पड़ गई थीं। तथापि इस अस्थायी अवस्था का इन बच्चों पर कोई हानिकर प्रभाव नहीं पड़ता और बाद में वे सदा की भांति हृष्ट-पुष्ट और सक्रिय ही निकलते हैं।

यही बात मुर्ग़ी के चूज़ों के बारे में भा कही जानी चाहिए, जो अंडे से निकलते ही इधर-उधर दौड़ने लगते हैं। उनकी मां चूल्हे का काम करती है, जहां वे ठंडे हो जाने पर अपने को गरमा सकते हैं। मुझे विश्वास है कि तुमने मुर्ग़ी को अहाते

में दाना चुगना बंद करके अपने बच्चों को अपने फैले हुए पंखों के नीचे इकट्ठा करते जरूर देखा होगा। वहां वह उन्हें अपनी गरम बगलों से चिपटा लेती है।

इस तरह चूज़ों का दैहिक ताप अकसर बदलता रहता है— अभी वे अहाते में इधर-उधर भाग रहे हैं और ठंडे हैं, तो अभी वे अपनी मां के पंखों के तले गरम और मज़े में हैं। ताप में इस तरह के परिवर्तन चूज़ों को मज़बूत बनाते हैं और उनकी वृद्धि को तेज करते हैं। सरीसृपों में भी यही बात देखी जा सकती है। सच तो यह है कि इस मामले में चूज़े अपने जनकों की अपेक्षा सरीसृपों से अधिक मिलते हैं। सरीसृप, जो दिन में धूप से गरम हो ज़ाते हैं, रात में कहीं ठंडे हो जाते हैं, उन्हें स्वयं ताप का बदलना कहीं ज्यादा पसंद है। मिसाल के लिए, स्थलजीवशालाओं में, जहां हम सांपों, छिपकलियों और कछुओं को रखते हैं, सरीसृप बिजली के बल्बों के नीचे जमा हो जाते हैं और अपने को ३६–३७ सेंटीग्रेड तक गरमा लेते हैं। इसके बाद वे सक्रिय हो जाते हैं और रेंगकर छांह में चले जाते हैं। ताप अगर स्थायी तौर पर ऊंचा हो, तो वे क़ैद में कदाचित ही जी पाते हैं।

पक्षियों की इस विशेषता की जानकारी कुक्कुट-पालन के लिए बड़ी महत्वपूर्ण है। थोड़े ही समय पहले तक बड़े-बड़े कुक्कुट-फ़ार्म अपने चूज़ों को गरम कमरों में रखा करते [illegible] और ताप को घटाते घबराते थे, चाहे उसमें घटा-बढ़ी [illegible] सेंटीग्रेड की ही हो। इस तरीके से, जिसका अभी भी कुछ [illegible]

फ़ार्मों में पालन किया जाता है, चूज़े कमज़ोर और दुबले रहते हैं।

अगर हम यह चाहते हैं कि पशु स्वाभाविक रूप से विकास करें, तो हमें इस बात की तरफ़ ध्यान देना चाहिए कि युगों-युगों के दौरान उनका शरीर नियत पर्यावरण के प्रति किस तरह अनुकूलित हुआ है।

अजगरों की भूख

अजगर संसार के सबसे बड़े सांपों मे एक है। हमारे चिड़ियाघर में भारत से इसका एक शानदार नमूना आया था, जो लगभग आठ मीटर लंबा और १२० किलोग्राम भारी था।

इतने विराट सांपों की शक्ति अपार होती है। वे अपने शक्तिशाली शरीरों को अपने शिकार के चारों तरफ़ लपेट लेते हैं और फ़ौलादी जकड़ में उसे मसल देते हैं।

इस भयंकर आलिंगन से जानवर का दम घुट जाता है और अजगर की जकड़ तभी ढीली होती है, जब शिकार निष्प्राण हो जाता है। इसके बाद अजगर अपने कुंडल खोलता है और अपने शिकार के सिर से शुरू करके उसे निगल जाता है। अगर शिकार काफ़ी बड़ा है, तो सांप को महीना भर या उससे भी ज्यादा समय तक भूख नही लगेगी।

अजगर अपने शिकार की हड्डियां कभी नहीं तोड़ता, यद्यपि वह आसानी से ऐसा कर सकता है। अजगर की यह विशेषता अनुकूलन की उस लंबी अवधि के कारण है, जिसमें खाने के सर्वोत्तम रूपों ने अपने आपको स्थापित किया था। बात यह है कि टूटी हुई हड्डियां शिकार की खाल से बाहर उभरकर खाने में बाधा डालेंगी।

अजगर जिस दिन चिड़ियाघर लाया गया था, उसके शरीर के सबसे बड़े हिस्से की मोटाई कोई ३० सेंटीमीटर थी, मगर भरपेट भोजन के एक-दो दिन बाद वह गैसों के कारण फूल गया।

चिड़ियाघर में हमारे अजगर को सूअर के बच्चे और ३० किलो या उससे भी ज़्यादा वज़न के सूअर खाने के लिए दिये जाते थे, मगर जिस तरह वह अपना मुंह फैलाता था, उससे तो यही लगता था कि वह कहीं बड़े जानवरों को भी निगल सकता है।

एक बार हमारा एक अजगर रेंगकर अपने पड़ोसियों—मगरों—के पास चला गया। वे सभी बड़े-बड़े वयस्क मगर थे। अजगर ने उनमें से एक को मसलकर निगल लिया। हममें से कुछ लोग हैरत में आ गये। हमारे डाक्टरों ने तो कहा कि शल्यचिकित्सीय हस्तक्षेप किया जाना चाहिए। मगर अजगर का अपना शिकार हज़्म करने में कुछ ही दिन लगे और मल में बस ऐसी अपच्य चीज़ें ही निकलीं जैसे नाख़ून और शल्क।

लेकिन अजगर आम तौर पर सूअर ही खाता था और उन्हें आसानी से पचा लेता था। अगर बिनपचा कुछ निकलता था, तो बस बाल, खुर और दांतों का एनैमल।

पाचन की रफ़्तार पूरी तरह से इस बात पर निर्भर करती है कि *स्थलजीवशाला में कितनी गरमी है*, क्योंकि सांपों, मगरों, छिपकलियों और कछुओं का स्थिर दैहिक ताप नहीं होता।

अजगर जहरीला सांप नहीं है। नाग और फुरसा जैसे विषैले सांप अपने शिकार को उसके ख़ून में अपने विषदंतों की विशेष ग्रंथियों में से ज़हर डालकर मारते हैं। ये विषदंत ऊपरी दांतों के जोड़े से विकसित हुए हैं। कभी-कभी सांप का शिकार भागने मे कामयाब हो जाता है, मगर फिर भी जहर के कारण मर जाता है। लेकिन वह चाहे जहां भी भागकर जाये, साप निरपवाद रूप से अपने शिकार को ढूंढ निकालता है।

वह डंसे हुए जानवर के पदचिह्नों पर सरकता चला जाता है और रास्ते मे ज़मीन और पौधों को अपनी लंबी, दो शाखावाली जीभ से छूता चला जाता है। साप की जीभ एक बहुत ही संवेदी अंग है और इस बात की कसर को पूरा कर देती है कि सांप के गंधेंद्रिय नही होती।

धामिन सांप, जो चिड़ियाघरों मे गरमियों में खुले बाडों में रहते हैं, अथक शिकारी होते हैं। वे घास में मेंढकों का इतना पीछा करते हैं कि वे बेचारे इतने थक जाते हैं कि और कूद नही सकते और केवल सरक ही पाते हैं।

किताबों मे अकसर यह पढ़ने को मिलता है कि सांप अपने शिकार की तरफ़ स्थिर आंखों से देखकर उसे "सम्मोहित" कर लेता है। यह एकदम झूठी बात है। अजगर खुरदार जानवरों, कृन्तकों तथा अन्य पशुओं को अपनी शल्कीय खाल की अचल चकाचौंध से आकृष्ट करते हैं। अपने शिकार को

देख लेने के बाद अजगर कुंडली मारकर बैठ जाता है, और धीरज के साथ उसके पास आने की प्रतीक्षा करता है।

जिज्ञासु पशु इस अजीब-सी चीज़ के पास आता है और जब वह काफ़ी पास आ जाता है, तो अजगर अपने शिकार को अपने जकड़ में कस दाब लेता है और अपनी पेशियों की ऐंठनों से उसे तत्क्षण निश्चल कर देता है।

सांप ने अपना शिकार चुना कि उसका बच पाना असंभव हो जाता है। तथापि सांप हमला केवल तब ही करता है, जब वह भूखा होता है। यह इस बात का सबूत है कि दूसरे जानवरों ने इस भयंकर दुश्मन के ख़िलाफ़ अपनी लड़ाई से कुछ भी नहीं सीखा है।

बंदर ज़्यादा ख़ुशक़िस्मत हैं और वे अजगरों के निर्मम आलिंगनों से बच पाने में अधिक सफल रहते हैं। इसलिए यह कोई अचरज की बात नहीं है कि इस तरह की मुठभेड़ों ने उनमें एक विशेष सतर्कता पैदा कर दी है। ऊंचे से ऊंचा पेड़ भी सांपों से कोई आश्रय प्रदान नहीं करता, जिनका अप्रिय स्वभाव यह है कि वे रात को ही हमले पर निकलते हैं, जब बंदर सोये होते हैं। चिंपांज़ी, जो पेड़ों की ऊंची टहनियों पर से जंगल के मालिकों को चिढ़ाता है, सांप को देखने के साथ दहलकर भाग जाता है।

यह प्राकृतिक वरण का और सांपों के साथ, जो बंदरों के अकेले सचमुच ख़तरनाक दुश्मन हैं, मुठभेड़ों से प्राप्त वैयक्तिक अनुभव का परिणाम है। उष्णकटिबंधीय अफ़्रीका के जंगलों में, जहां भांति-भांति के सांपों की भरमार है, चिंपांज़ी खोखले पेड़ों

की बड़ी सावधानी के साथ जांच करेगा, क्योंकि वह इस बात को भली भांति जानता है कि हो सकता है कि उनमें चिड़ियों के अंडेवाले घोंसले की जगह उसका विषैले सांप से ही सामना हो जाये।

कुछ वर्ष हुए, विदेश से चिंपांज़ियों का एक जोड़ा मास्को के चिड़ियाघर मे आया। नर का नाम था हांस और मादा का लीज़ा।

वे एक ही पिंजरे मे रहते थे। हांस बड़ा हट्टा-कट्टा और लड़ाकू स्वभाव का जानवर था। किसी को भी दोनों में से किसी के भी पास जाने की हिम्मत नही होती थी। एक बार हमें उन्हें दूसरे पिंजरे में ले जाने की ज़रूरत पड़ी और हमें यह नही मालूम था कि इस काम को कैसे करें। पहले हमें उन्हें एक चलते-फिरते पिंजरे मे स्थानांतरित करना था और फिर उनके नये निवास में ले जाना था।

हमने चलते-फिरते पिंजरे के दरवाजे को बड़े पिंजरे के दरवाजे से भिडा दिया और फिर जोडे को दूसरे पिंजरे में जाने के लिए फुसलाना शुरू किया। लीजा तो आसानी से चाल में आ गई, मगर हांस ने टस-से-मस होने से भी इन्कार कर दिया। आख़िर वह गुस्से में आ गया और चीखता हुआ इधर-उधर दौड़ने लगा।

क्रोधोन्मत्त जानवर बिलकुल बेकाबू हो गया। हमने उस पर ठंडे पानी की धार छोड़ी, मगर इससे बात बनती तो क्या, और बिगड़ गई। अब लीजा भी चलते-फिरते पिंजरे से हांस के पास लौट आई।

अब दोनों ही ऐसे जम गये कि हिलें ही नहीं। हांस तो और भी ज़्यादा मतवाला हो गया।

आख़िर बंदर विभाग के प्रमुख को एक बात सूझी।

"अरे जल्दी से एक विषहीन धामिन सांप तो लाओ," उसने एक बाल-जीवविज्ञानी से कहा।

कुछ ही मिनटों में सांप मौक़े पर पहुंच गया। जैसे ही बेक़ाबू हांस की नज़र पिंजरे के फ़र्श पर पड़े सांप की काली देह पर पड़ी कि उसका ग़ुस्सा डर में बदल गया। वह आतंकित हो गया। उसकी आंखें फटी-सी रह गईं। पहले तो उसने रक्षात्मक रुख़ अपनाया, मगर फिर इधर-उधर असहायतापूर्वक देखते हुए पीछे हटने लगा।

सांप और पास आ गया। लीज़ा चलते-फिरते पिंजरे के सबसे दूर कोने में गठरी बनी बैठी थी। आख़िर हांस भी लपककर उसी में जा घुसा। हमने दरवाज़ा बंद किया और चिंपांज़ियों को वहां से ले गये।

हांस दिनभर डर और घबराहट के मारे कांपता रहा, जिसका कारण था वही सांप, जिसे उसने आज देखा था।

बेचारा हांस! उसे यह कैसे बताया जाता कि वह सांप कोई जहरीला नाग नहीं था और अगर किसी को नुक़सान पहुंचा सकता था, तो बस मामूली मछलियों या मेंढकों को ही!

शिकार और गंध

ख़रगोश जैसे ही पैदा होते हैं और उनकी मां चाट-चाटकर उन्हें साफ़ कर देती है कि वे उसके स्तनों की तरफ़ लपकते हैं। भरपेट दूध पीने और कुछ आराम के बाद वे इधर-उधर भाग जाते हैं और फिर दो, बल्कि तीन-चार दिन तक भी घास में निश्चल बैठे रहते हैं। इस अवधि में उन्हें किसी भोजन की आवश्यकता नहीं होती। उनकी मां के दूध का पहला पान, जिसमें गाय के दूध से छः गुनी वसा होती है, उन्हें ज़िंदा रखता है।

जब शिशु-ख़रगोश निश्चल होते हैं, तब उनकी मां भी उन्हें नहीं ढूंढ सकती। तुम पूछ सकते हो, "इसका क्या कारण है?"

शिशु-ख़रगोशों में एक विशेष चीज़ होती है, जो उनकी उनके शत्रुओं से रक्षा करती है—वह है उनकी त्वचा में स्वेद-ग्रंथियों का न होना। पसीने का स्राव करनेवाली ग्रंथियां सिर्फ़ एक ही जगह होती हैं—उनके पंजों के तलुओं में। जब ख़रगोश चलता है, तब वह अनिवार्यतः गंधयुक्त पदचिह्न छोड़ता चला जाता है, जिनका उसका शत्रु अनुसरण कर सकता है। जब ख़रगोश अपने पंजों को ज़मीन से लगाये बिलकुल एक ही जगह बैठा रहता है, तब न तो कुत्ते और न दूसरे जंगली जानवर ही उसका पता चला सकते हैं। ख़रगोश का कुत्ते जितना ही ज़्यादा पीछा करते हैं, उसकी स्वेद-ग्रंथियां उतना ही ज़्यादा पसीना छोड़ती हैं और उसकी गंध भी उतनी ही ज़्यादा तेज़

दांत निकल आते हैं और वे कोमल घास कुतरना शुरू कर देते हैं। शिशु-ख़रगोशों की यह विशेषता उन्हें लोमड़ियों तथा अन्य जानवरों के जबड़ों से बचाती है।

यद्यपि ख़रगोश के पंजों की स्वेद-ग्रंथियों के स्राव दुश्मनों को उसकी टोह दे देते हैं, मगर वे पीछा किये जाने के समय उसकी सहायता भी करते हैं, क्योंकि वे उसके तलुओं के मोटे बालों पर बर्फ़ या गीली मिट्टी को नहीं जमने देते।

इस समय चूंकि हम पदचिह्नों और खोज की ही बात कर रहे हैं, इसलिए कुछ शब्द लोमड़ी के पदचिह्नों के बारे में भी बता दें। हर कोई शिकारी जानता है कि लोमड़ी के पदचिह्न कुत्ते के पैरों से बने निशानों से बहुत भिन्न होते हैं। कुत्ते का पंजा बर्फ़ पर स्पष्ट छाप छोड़ता है, जिसमें नंगी, गद्दीदार पादांगुलियों की आकृति एकदम साफ़ होती है। लोमड़ी का पदचिह्न इतना स्पष्ट नहीं होता, क्योंकि उसके पंजों के तलुए लंबे बालों से ढंके होते हैं। तो इस तरह सरदियों में लोमड़ी एक तरह "नमदेदार जूते" पहनकर घूमती है।
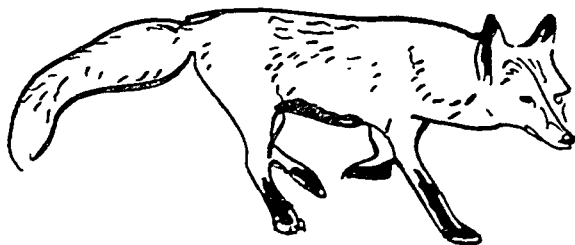
इन जूतों की बदौलत लोमड़ी के पैरों के नीचे की सख़्त बर्फ़ के टूटने पर वे घायल नहीं होते। मगर उसी खेत पर भागता कुत्ता अपने पदचिह्नों में ख़ून के धब्बे छोड़ता चला जायेगा। लेकिन ऐसे भी वक़्त आते हैं, जब जीवन लोमड़ी के लिए भी मुश्किल हो जाता है। अगस्त के आख़िर और सितंबर के प्रारंभ में लोमड़ी के पंजों के लंबे बाल झड़ जाते हैं और उसकी स्वाभाविक तेज़ी जाती रहती है। नये बाल शुरू-शुरू में मोटे और सख़्त होते हैं और उनसे पंजों में बहुत तकलीफ़ होती है। लोमड़ी ऐसे चलती है, मानो अंगारों पर चल रही हो, वह ज्यादा भाग नही सकती और मामूली कुत्तों तक की पकड़ में आ जाती है।

बालों के लंबे होने और पंजों को ढंकने में कोई तीस दिन लगते हैं और तब जाकर लोमड़ी के जीवन की यह ख़तरनाक अवधि ख़त्म होती है।

नमक सबको चाहिये

मास्को के पासवाले इलाक़ों के पक्षी अकसर चिड़ियाघर आते रहते हैं। इनमें अधिकतर तो गौरैयां ही होती हैं, मगर गोल्डफ़िंच, बुलफ़िंच, सिस्किन और लिनेट के झुंड भी देखे जाते हैं। ये सभी पक्षी हमारे पशुओं की नांदों से, ख़ासकर उनमें पड़े नमक के बड़े-बड़े ढेलों से आकर्षित होकर वहां आते हैं।

प्रकृति उतनी सुव्यवस्थित नहीं है, जितनी हम उसे समझते हैं और पौधों पर जीनेवाले अधिकांश पशु नमक के लिए लालायित रहते हैं। मैंने रेगिस्तानों में अकसर स्थल कच्छपों को झाऊ की पत्तियों से नमकीन ओस चाटते या खारी मिट्टी को चाटते देखा है। गायों, भेड़ों, बकरियों और घोड़ों को जब भी मौक़ा मिलता है, वे भूखों की तरह नमक खा जाते हैं। रेनडियर जो सरदियां नमक के बिना बिताते हैं, गरमियों में नमकीन ज़मीन तलाश करते हैं और उनमें गहरे छेद कर लेते हैं।

चिड़ियाघर में मैंने एक शुतुरमुर्ग़ के आगे थोड़ा-सा नमक रख दिया। उसने और उसके साथियों ने उसे फ़ौरन चट कर डाला और

इसके बाद जब भी मैं उनके बाड़े के पास से गुजरता था, वे उत्तेजना प्रकट करते थे।

गिलहरियों, खरगोशों, खेतमूसों तथा कई और जानवरों को नमक की जरूरत पड़ती है और वे इस बात को जानते हैं।

अक्सर जंगली जानवरों को अपने खून को उसके लिए आवश्यक नमक का प्रदाय करने के लिए जगह से जगह भटकना पड़ता है। एल्क और रेनडियर तथा अन्य जानवर कभी-कभी लंबी-लंबी दूरिया तय करके समुद्र तट पर जाते हैं और वहा ज्वार द्वारा छोड़े खारे झाग को चाटते हैं।

मांसभक्षी पशुओं के सिवा सभी पशु नमक की आवश्यकता को अनुभव करते हैं। अगर नमक का अभाव होता है, तो वे कमजोर हो जाते हैं और उनकी भूख खत्म हो जाती है।

मांसभक्षी पशुओं को जितने नमक की जरूरत होती है, वह सब उन्हें अपने खाये तृणभक्षी पशुओं के मास, हड्डियों और खून से मिल जाता है।

इसके विपरीत तृणभक्षी पशु अपने द्वारा खाये जानेवाले पौधों मे विद्यमान सोडियम क्लोराइड की नगण्य मात्रा पर निर्भर करते हैं। इन पौधों की जड़ें मिट्टी से पोटेशियम के लवणों को चूस लेती हैं (तुम्हें याद होगा कि किसान अपने खेतों को पोटेशियम लवणों से उर्वर बनाते हैं, न कि सोडियम लवणों से)। तृणभक्षी पशु खारी जमीन पर जाते हैं, जहां वे

सोडियम क्लोराइड या सोडियम सल्फ़ेट चाटते हैं। सोडियम के लवण उनके रुधिर को पोटेशियम के आधिक्य से मुक्त कर देते हैं, जो मूत्र के रूप में शरीर से निष्कासित हो जाता है।

इसी कारण पशु-संरक्षणालयों में रखी नमक की नांदें सिर्फ़ एल्कों और चिकारों ही नहीं, बल्कि ख़रगोशों, गिलहरियों और चूहों तथा उत्तरी प्रदेशों में हवाई गिलहरियों को भी आकर्षित करती हैं। इन सभी को नमक की ज़रूरत है, क्योंकि उसके बिना उनके रुधिर की बनावट असामान्य हो जाती है और उनके आमाशय-रस में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल नहीं रहता। नमक के बिना वे कमज़ोर हो जाते हैं और आसानी से विभिन्न रोगों के शिकार हो जाते हैं। इसलिए इसमें अचरज की क्या बात है कि नमक उन्हें इस तरह आकर्षित करता है।